दिव्य-प्रणय की दीपशिखा

[महीयसी मीरा के जीवन पर आधृत मौलिक खंड-काव्य]

डॉ. हरीश
उप-प्राचार्य, आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजकीय स्वायत्तशासी महाविद्यालय
अजमेर

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

प्रकाशक कृष्णा ब्रदर्स
महात्मा गांधी मार्ग
अजमेर (राज०)

प्रथम संस्करण मई १९९०
मूल्य ८०/- (चालीस रुपये)
मुद्रक सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यन्त्रालय अजमेर
आवरण शिल्प प्रकाश आर्टिस्ट

DIVYA–PRANAY KI DEEPSHIKA • A KHAND KAVYA —By Dr HARISH

समर्पण

शब्द का सामर्थ्य, तेरे इंगितों का नाद
प्रीति-मय आदेश तेरा,—'याद में आबाद'
भक्ति-नभ के सूर्य ! करुणा के अमर अवतार
दीन बंधु ! दयार्द्र-दाता ! दीन के दरबार ॥१॥

× × ×

पूर्ण-ब्रह्म ! रसेश ! प्रभु ! तुम, भक्त-वत्सल-भूप
आदिनाथ, विराट् तुम ही, कृष्ण के प्रतिरूप
हे पतित-पावन ! तुम्हारी दीप्ति रस का राग
प्रणय की मनुहार, कान्ता-भक्ति, अमर-सुहाग ॥२॥

× × ×

भक्ति-लौ, माधुर्य का श्रृंगार, जिनके साथ
पद्म जलवत्, आप माधव, मुक्ति जिनके हाथ
यह प्रणय की दिव्य-रेखा, प्रभु ! करो स्वीकार
हे दयाघन ! शब्द ! दाता ! दीन के आधार ॥३॥

करुणावतार
अनंत-श्री ! दीनबंधु ! सदगुरु-समर्थ
श्री दाता भगवान के चरण-कमलों में
सादर श्रद्धा सहित—
अकिंचन
हरीश

स्वरित

प्रीति के अवतार ! मन के मीत ! जय के प्राण
हे मुरारी ! यह तुम्हारी, बाँसुरी का दान
गति, प्रगति के रूप, मोहन ! माधवी अनुराग
विश्व को दो कर्म का, अच्युत ! अनत सुहाग ।।१।।

काम, क्रोध, विदग्ध-पीडा से भरे सगीत
मार्ग हैं अवरुद्ध, माधव ! मोह से अभिनीत
भक्त वत्सल ! विभ्रमी जग के सभी अभियान
कहाँ मधुसूदन ! तुम्हारी मधुरिमा मुस्कान ? ।।२।।

विष बुझे हैं पात्र सारे, अह से आक्रान्त
फूँक दो वह शख, भटका विश्व फिर हो शान्त
ज्यों दिया आलोक, विष अमृत बना उदगीथ
त्यों हटा दो मोह तामस, जागरण हो गीत ।।३।।

काव्य के प्रणयी ! तुम्हारे प्यार की आशीष
सत्य, शिव, सुन्दर, बनें स्वर प्राण के हे ईश !
हे मुकुन्द ! उदार ! वाणी प्रणय-काव्य विशेष
सृजन पाये, कर्म का, दे विश्व को सन्देश ।।४।।

प्रार्थना के उपकरण लेकर दयानिधि ! आज
पूर्णब्रह्म ! सिंगार ! मोहन ! शब्द-स्वर, रसराज !
प्रणय की इस दीप्ति लौ को, शब्द दो गोविन्द !
स्नेह-सर्जन, सिद्धि-समता, को गिरा गोविन्द ! ।।५।।



प्राक्कथन

शशव से ही माँ से दिव्य-प्रणय की दीपशिखा मीरा [illegible] परम श्रद्धेय पिताजी मीरा के कई पदो का श्रद्धा से पाठ करते थे और मैं, "श्रद्धावान लभते ज्ञानम्" सूत्र की असाधारण शक्ति से उत्प्रेरित होकर सभी कुछ चुपचाप सुनता गुनता रहा। अत्यन्त भाव प्रवणता मे मिला ममतामयी माँ का वह गीत-गुजन ही प्रस्तुत काव्य के मूल म है। माँ की ममता और पिता की आशीष जिसे मिले, वह निश्चय ही भाग्यवान है और मेरे सौभाग्य ने ही इस काव्य को वाणी दी है, ऐसी मेरी मान्यता है।

इस सृजन के प्रेरक कुछ क्षण सत्य और भी है, जिनकी अक्षरता का आज भी श्रद्धा से स्मरण कर लेता हूँ। वे सृजन सयोग है—शैशव से ही चित्तौड यात्रा, मेडता-यात्रा तथा व दा-विपिन व्रज मे महीनो निवास। इन्ही सब क्षणो का भाव-सचय इस रूप मे बिखर गया। पुण्य सलिला भागीरथी के तट (हरद्वार) पर इस काव्य के मगलोन्गोष का समारभ हुआ फिर मीरा-मदिर चित्तौड और यमुना तट एव निधुवन म इसके कुछ अश उतरे और फिर सहसा ही लेखनी स्तब्ध हो गई। पूरे पाँच वष यह कतृत्व अपरिसमाप्त ही पडा रहा। एक दिन फिर किसी अज्ञात प्रेरणा से एक सग और लिख गया।

इधर अनेक वर्षों से शोध कम मे व्यस्त रहने से मीरा पर पढ़न को मिला और इतिहास का मीरा पर अनपेक्षित मौन देखकर रक्त उबला। कई शोध अनुसधाताओ ने इस जीवन्त नारी को कल्पित-पात्र माना है। कुछ ने तो राजस्थान मे उसका अस्तित्व ही अस्वीकार कर दिया और कुछ ने स्वीकार भी किया, तो भी इतिहास के सशक्त-मौन की तह मे सब की भावाजें जैसे मूछित हो गईं। शताब्दियो से राजस्थान की आत्मा बनकर बोलने वाली, त्याग और प्रेम की अक्षय-निधि, जिसका गीत-गुजन रामायण के पाठ की तरह देश के कोन कोने मे होता रहा है, जिसके गीत झोपडी से लेकर आकाशवाणी तक एक रस व्याप्त रहे ह, उन्ही गीतो की निर्मात्री, निर्दोष, निष्कलुष मीरा का शोध कर्मियो द्वारा किया उपहास प्राण मे तीखा आक्रोश बनकर समा गया, इसलिये लिखने की प्यास और भी शोलो जैसी भडकती चली गयी। कुभा, प्रताप, दुर्गादास, चित्तौड, पन्ना और मीरा क बिना राजस्थान की कल्पना नही की जा सकती। मेवाड की तो मीरा

राजरानी ही रही है। शृ गार और शम का सफल समन्वय करके, उस साधना को जीवन मे उतार कर उसने हमारे लिए आशा, जागृति, प्रीति और भक्ति के अनेक अवरुद्ध मार्ग खोले है। मेवाड का कण कण उसकी प्रणय-भक्ति और आराधना से सिक्त है। वह मेवाड की जीवन्त, महिमामयी एव निधान-कलश भक्त थी, जिसके कारण मेवाड के भक्ति-स्वाभिमान के इतिहास म एक गौरवशाली पन्ना और जुडा। मेवाड के लिए ही नही, समस्त भारतवर्ष के लिए मीरा को भुलाना अत्यन्त कठिन ही नही, नितान्त असभव भी है।

जन्म मेवाड म होने से दिन रात मेरा सकल्प मीरा की खोज म लगा रहा और खोज से भी अधिक चिता मीरा के अस्तित्व की होती रही। अनेक तथ्य भी मिले। अनेक जन प्रचलित कथाएँ भी सुनी। मीरा की कई हस्तलिखित प्रतियाँ भी देखने म आई, तो इस विश्वास को सहज ही बल मिला कि आलोचका के शस्त्र से प्रणय का यह दीप्ति-स्तम्भ टूट नही सकता। देवता की आराधना म समर्पित श्रद्धा का अजस्र-आधान कभी म्लान नही हो सकता। मीरा अमर है, शाश्वत है और शरीर मे प्राणवायु की तरह जीवन्त होकर राजस्थान (मेवाड-मारवाड) और समस्त भारतीय सस्कृति म पानी मे नमक की भाति घुल गयी है। बस इसी ममता और सकल्प-बल से यह काव्य आगे बढता गया।

सूर्य की रश्मिया अनन्त ह। मुझे जो मिल सकी, व आपके समक्ष प्रस्तुत है। कुछ रश्मियो के दान मात्र से ज्योति के देवता की अर्चिति मे भला कोई कमी हो सकती है? या कृपा की कुछ भीख मैंने इस काव्य के लिए वृदावन के बाके बिहारीजी एव राधा-रमण के विग्रहो से भी मागी थी। प्रभु की इच्छा समझ, भक्त शिरोमणि महिमामयी साधिका मीरा के साथ मेरी भाव-ममता सदैव जुडती चली गई और यह भावना प्रेरित आख्यान, जैसा भी बन पडा, आपके हाथो मे है।

इतिहास का सामान्य सही सूत्र इसमे मिलेगा। कुछ पात्र जैसे पथिक और वृद्ध कथावाचक पुजारी काल्पनिक हैं। शैशव के सस्कारो के कारण मैंने नास्तिकता की ओर कभी आख नही उठायी। भक्ति का आवेश-आक्रोश सदा स्वीकार करता रहा हूँ अत इस काव्य मे वह पुरातनता अनेक स्थलो में मुखर है साथ ही जन प्रचलित कुछ प्रिय प्रसगो से सहायता लेने का लोभ सवरण भी कठिनाई से कर पाया हूँ। कृति के छन्द-बोध और अलकरण का मुझे कतई स्मरण नही। वह तो आपका दाय है। साहित्य-कर्मी तो अपनी बात कहने को विकल रहता है और वही मैंने किया है।

—जैसी बात नहीं कहती। बिहारी की तरह वह सांस के भूले पर नहीं भूलती। पद्माकर और घनानन्द की नायिकाओं से भी हम उसकी दशा का साम्य निर्धारित नहीं कर सकते। रत्नाकर की गोपियों की भांति—

"ऊधो यह सूधो सो संदेशो कहि दीज्यो जाय
अबके हमारे यहाँ न फूले वन कुंज हैं,
किंशुक, गुलाब, कचनार औ' अनारन की
डारन पै डोलत, अंगारन के पुंज है, ऐसे कथ्यों वाली बात भी मीरा की प्रकृति को दहलाती नहीं।

उसका विरह तो दिव्य है। दूसरों को जलाने और संतप्त करने वाला नहीं। यह तो भक्ति माधुर्य का जीवन्त-विरह है। उस सरोवर में वह अकेली ही अवगाहन करती है। वह स्वयं तो दहलती है पर दूसरों को माधुर्य और शांति बाँटती है—

"अंग-अंग व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो
अंतर्वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो
सखी! म्हारी नींद नसानी हो।"

उसका विरह तो प्रेमोन्माद और दिव्य का विरह है। वह शृंगार और ऐहिक-विलास का विरह न होकर भक्ति, माधुर्य या वृन्दावनी-भाव का विरह है। उसमें तो कबीर की 'लाली मेरे लाल की' या 'राता माता नाम का" जैसी दिव्यता और आत्म-तुष्टि है। उसमें गलदश्रु उछल-कूद और अशांति न होकर अन्तःसलिला भागीरथी का पुण्यश्लोक प्रवाह-प्रसार है। इसलिए मैं मीरा को शृंगार रस की कवयित्री न मानकर, भक्ति-माधुर्य सम्पन्न मधुर-रस की साधिका मानता हूँ। किसी भी भारतीय नायिका से यदि उसके विरह का साम्य हो सकता है, तो वह भूमिका जगज्जननी सीता, चैतन्य महाप्रभु की विष्णुप्रिया कृष्ण की राधा और बुद्ध की यशोधरा, बस इन्हीं नायिकाओं की समता में ही स्थापित की जा सकती है। प्रणय भी कैसा? साधारण लौकिक प्रणय नहीं दिव्य-प्रणय जिसमें कौमुदी की सान्द्रता और सुधा विद्यमान है। उसमें गोपी-भाव, कान्ता-भाव और वृन्दावनी-भाव-माधुर्य है। मीरा ने प्रियतम के प्रीति भावावेश में आकर जो अपने सृजन में अनेक 'पातियाँ" लिखी है, वे असाधारण हैं। उनमें प्राणों को छू लेने वाली प्रिय की तीव्र-उत्कंठा का अनुराग है अनुभूति की परम-तीव्रता है एवं लौकिक से अलौकिकत्व को स्पर्श करने वाली अद्भुत क्षमताएँ भरी पड़ी है। मीरा की यह पाती या पातियाँ राजस्थानी साहित्य में ही नहीं, भारतीय साहित्य में

अपनी सानी नही रखती और व साधिका की छटपटाहट और प्रेम के गभिन इन्द्रधनुषी-भावावेगो से निर्मित हैं। उसमे कान्ता-भाव या वृन्दावनी-भाव का माधुर्य है और इसीलिए वह अप्रतिम है। मीरा को साधारण नायिकाओ के लौकिक स्तर पर स्थापित कर ऊपरी टटोल से सतुष्ट हो जाने वाले आलोचक मीरा के मर्म, प्राण-तत्व, सौंदर्य और सवेदना का आंशिक भी नही परस पाते, ऐसी मेरी मान्यता है। साधना के इस दुष्कर धरातल पर चलने वाली इस दिव्य-प्रणयिनी को सामान्यत काव्य मे बाधना मुझे कई स्थलो पर कठिन लगा है, पर "त्वदीय वस्तु गोविंद" का सहज स्मरण करते करते ही मैं इस मार्ग पर बढा हूँ। सफलता मेरा इष्ट नही, श्रम ही मेरा कर्तव्य है, और मुझे इस "दिव्य-प्रणय की दीपशिखा" के सृजन पर सतोष है। हमारे यहाँ साधको और सन्तो ने अपने लिए कुछ भी जानकारी नही दी है। अन्तर्साक्ष्य एव बहिर्साक्ष्य के सम्बन्ध मे बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। मीरा जैसी कवयित्री के लिए जानकारी 'मीरा की परची' मे मिलती है। परची, परिचयी या पडची और परचिति इसी परची काव्य के रूप हैं और यही काव्य साक्ष्य रूप मे हमे ऐसे काव्यो की जानकारी देते हैं, ऐसे काव्यो मे 'मीरा की परची' काव्य प्रमुख है जिससे मुझे सहायता मिली है।

आभार ज्ञापन

मधुर रस और माधुर्य-भक्ति के अध्ययन के लिये मैं वृन्दावन के विद्वद् मिश्र प्रवर डॉ० श्रीशरण विहारी गोस्वामी, आदरणीय अग्रज श्रद्धेय ब्रजवल्लभ शरण अधिकारी, अतुल कृष्ण गोस्वामी, ललिता चरणजी, जगदीशचन्द गोस्वामी तथा अपनी पत्नी डॉ० करुणा शर्मा का विशेष आभारी हूँ, जिन्होने मुझे इस अलौकिक नित्य-विहार रस के सिद्धान्त को समझने मे सहायता की है। चैतन्य-गौडीय सम्प्रदाय की दो उत्कृष्ट कृतिया उज्ज्वल नीलमणि और हरिभक्ति रसामृत सिन्धु से भी मैंने सहायता ली है फिर भी प्रणयिनी मे मधुर-रस का स्थूल चित्रण ही प्रस्तुत हो सका है। इस गूढ रहस्य को समझना ही अत्यन्त कठिन है फिर आत्मसात कर काव्य के माध्यम से उसे लिखना तो और भी दुष्कर कार्य है, तथापि एक प्रयास आपके समक्ष है, विश्वास है, विद्वज्जन इसकी त्रुटियाँ सुधार लेंगे।

काव्य के वैशिष्ट्य के रूप म वृद्ध-वाचक ने काव्य के अतिम या सप्तम सर्ग मे उद्बोधन दिया है, जिसे दीप्ति दान नाम दिया गया है। उसमे अनेक व्यक्तियो को मतभेद भी हो सकते हैं पर वह भी कुछ ऐसा है, जिसमे आँख बचाकर नही जाया जा सकता। उसमे सत्य सुन्दर और कर्तृत्व वाचक की अनुभूति और मेरी अपनी अभिव्यक्ति का है।

काव्य का प्रारम्भिक अंश मथुरा की त्रैमासिक पत्रिका श्रीकृष्ण-संदेश में छापा गया तदर्थ मैं उसके सम्पादक श्री हितशरण शर्मा का हार्दिक आभार प्रदर्शन करता हूँ। अपने अग्रज आदरणीय श्री देवदत्तजी शास्त्री (इलाहाबाद) का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ, जो इसे पूरा करने को सदैव बाध्य करते रहे। काव्य के शेष अंश श्रीकृष्ण संदेश के अधिकारियों द्वारा प्रकाशित अंश का सम्मानिक रोक लेने के कारण आगे नहीं छप सके, जिसका मुझे खेद है। आशा है पाठक मुझे एतदर्थ क्षमा करेंगे। इसी काव्य का घटा घटा छोटा रूप 'प्रणयिनी' नाम से भी छपा, पर सम्पूर्ण रूप अब दिव्य-प्रणय की दीपशिखा के नाम से सामने आ रहा है।

प्रयाग के प्रसिद्ध साहित्यकार श्रद्धेय श्रीकृष्णदासजी (अब स्वर्गीय) की अहेतुकी कृपा का भी ऋणी हूँ, जिन्हें राजस्थान के नाम से ही पुलक हो जाता था। दासजी में राजस्थान का चप्पा चप्पा छानने की तीव्र प्यास थी। चित्तौड़ पन्ना, प्रताप और मीरा उनकी ममता और करुणा का मर्म-स्पर्श करते थे। उनमें उनकी श्रद्धा का आधान अमर था। मुझे श्रद्धेय दास बाबू का यह काव्य लिखते समय अजस्र आशीर्वाद मिला है, एतदर्थ उन्हें श्रद्धा से शुभकामनाएँ समर्पित, क्योंकि आज उनकी यश काय ही शेष है।

एक वरिष्ठ व्यक्तित्व और था, जिसका दुलार और वात्सल्य इस काव्य के सृजन-सम्बरण की सशक्त प्रेरणा रही है। वह विदुषी थी—प्रयाग की आदर्श नारी श्रीमती चन्द्रकराजी। वे परम-वैष्णव थी। तन मन और कर्म सभी से। उनका जीवन अनवगाह्य समान रहा। मैंने उन्हें 'माँ' कहा और उनसे भी असाधारण उन्हे पाया। इस काव्य का पूरा करने में उनकी प्रेरणा अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। उनको धन्यवाद देना उनकी ममता का उपहास करना होगा। आज यह काव्य प्रकाशित हो रहा है, परन्तु इसे देखने के लिये वे सशरीर अब इहलोक में नहीं हैं।

कृति में जो कुछ भी श्रेष्ठ है वह सब विद्वानों की अनुकम्पा तथा दाता प्रभु की महर के कारण ही है और जितना अमंगल है, वह सब मेरा है। शरीर के किसी अंग में यदि कभी फोड़ा हो जाय, तो उसकी निर्ममता पूर्वक शल्य-चिकित्सा करानी ही होती है। इसलिए जो आपको रुचे, उसे ग्रहण कर लीजिएगा। शेष जितना भी अग्राह्य है, वह निर्ममता से त्याज्य है। मुझे ज्ञान है सुधी पाठक नीर-क्षीर-विवेकी होता है।

"दिव्य-प्रणय की दीपशिखा" काव्य का समर्पण परम पूज्य श्लोक अनन्त श्री सद्गुरु समर्थ श्री दाता को किया है। वे हमारे आज के साक्षात गोरख-शिव एवं रामकृष्ण परम हंस हैं। दिव्य प्रणय की दीपशिखा मीरा जैसे

ही राजपूत कुल मे जन्म लेकर अलौकिक सत बनने तक की दोनो परम्पराम्रो से हमारे दाता प्रभु जुडे हैं। अत मैं अपनी श्रद्धा का यह सृजन-अर्घ्य सब समय श्री दाता भगवान् के श्रीचरणो मे प्रस्तुत करने का साहस जुटा रहा हूँ। मैं अकिंचन हूँ। वे विराट एव पावन है। परमदम अविनाशी पूर्ण ब्रह्म सदगुरु समर्थ। पतित-पावन होने के नाते मुझ जैसे दुष्ट प्रकृति के दास का यह अक्षर-अभियान महामना श्री दाता ने स्वीकार कर मुझे व मेरे कवि के जन्म-जीवन को धन्य-धन्य कर दिया है। वे तो करुणा के समुद्र है। नत सिर होकर यह सृजनार्घ्य पुष्कर-सत्संग १९८७ म मैंने उनके चरणकमलो मे रखने का साहस किया था। यह मेरे लिए गौरव की बात है कि दीनबन्धु श्री दाता ने मुझ अकिंचन का यह काव्य-समर्पण स्वीकार कर मेरे मनुष्य-जन्म और मानव तन को सार्थक किया है, यह उन जैसे विराट का आशुतोषी-अनुग्रह ही है। उन्हे एतदर्थ शरणागति के साथ अपने कोटि कोटि नमन ही अर्पित करता हूँ।

मेरे आकाश-धर्मा गुरुवर डॉ० रामकुमार वर्मा ने इससे पहले १९६२ मे मेरे गीत सग्रह "धडकनो के बोल" की भूमिका लिखकर मुझे अशीशा था। यह अक्षर-वैभव उन्ही का दिया प्रसाद है। दिव्य-प्रणय की दीपशिखा की जीवन्तता और प्राण-तत्त्व उन्ही का अनुग्रह है। उनका आशीर्वाद इसमे छपता, पर समय पर न प्राप्त हो सका अत उसे अगले सस्करण म दिया जायेगा। मैं गुरुवर डॉ० रामकुमार वर्मा के आरोग्य, दीर्घ-जीवन और सृजन-वर्चस्व की प्रभु से कामना करता हूँ और एतदर्थ अपनी सादर प्रणति उन्हे समर्पित करता हूँ।

कृति को इस रूप म आपके समक्ष प्रस्तुत करने का सारा श्रेय कृष्णा-ब्रदर्स के सस्थापक श्री जय कृष्ण अग्रवाल व उनके सहकर्मी भाई सिंगोदिया एव वैदिक यन्त्रालय के श्री सतीश शुक्ल का भी आभारी हूँ, जिनके कारण 'दिव्य-प्रणय की दीपशिखा' आपके हाथो मे पहुँच सकी।

आज के शैक्षिक पाठ्यक्रम मे भी मीरा पर लिखे आख्यान काव्यो का कही कोई स्थान नही है, यह अभाव भी मुझे सदैव खलता रहा है। शायद यह काव्य शिक्षा जगत मे अपने कुछ पाठक तैयार कर सके। मेरे देश मे महीयसी मीरा के कोटि कोटि भक्त है। उसके अनेकानेक पाठक हैं। उसके गीत हमे चाँद सूरज की तरह प्यारे है। अत यह दीपशिखा उन सबके लिये प्रस्तुत है। इसके साथ, वे जो भी करें। यदि विद्वानो, पाठको, विद्यार्थियो एव शिक्षा सस्थानो से इस कृति को प्यार मिला, तो इस श्रद्धा-सृजन को सार्थक समझूँगा। लीजिए अपनी कृति "दिव्य-प्रणय की दीपशिखा" स्वस्ति सहित स्वीकार कीजिए।

—डॉ० हरीश

क्रम

स्वप्न

अग्नि पथ पर चल रहे युग बीतते अज्ञात
स्वप्नवत् क्षण क्षण यहा पर कट रहे दिन रात
मोह तम, बढता सदा, आकर्षणो मे मीत
मिल न पाती शाति मन को, है गिरा गोतीत ॥१॥

दिवस बीते पर न मिल पायी हृदय की प्रीत
कौन बोला मन अजिर से, बन मधुर सगीत
क्यो विषम है विश्व के पथ प्राण के आधार ?
बढ रही है प्यास प्रतिपल, हो रहा मन भार ॥२॥

शून्य मे मुस्कान भरता कौन यो अनजान ?
स्वास हर आयाम मे है, मोह का अनुदान ?
ज्यो सँजोता प्यास का रूपक मधुर विश्वास,
त्यो विगत यह स्नेह होता, रुग्ण होती आस ॥३॥

वेदना की एक रेखा चचला सी क्रूर
खीचती जाती उदासी के क्षितिज भरपूर
ठोकरें, समवेदना है घनीभूत अशात
मेघ सकुल, घिर गया नभ, हो गया उद्भ्रात ॥४॥

ईश ! कैसे मिल सकेगा प्राण को पाथेय ?
भटकता आता हृदय, जीवन बना क्यो हेय ?
क्या तुम्हारे प्रणय मे है सौरभी-विश्वास ?
क्या तुम्हारे नाम मे है दिव्य तीव्र-विलास ? ॥५॥

रिक्त मन भयभीत दिग्व्यापी भरे भव जाल
काटते हैं विषम विषयी-काल के विष-व्याल
आत्म-बोध पुकार मधुमय कब मिलेगी प्राण ?
अन्धकार उदास जीवन हो रहा है म्लान ॥६॥

चल चुका हूँ दूर इतना, छोड जग की राह
ढल चुका हूँ चांद जितना, अब न कोई चाह
एक राही बढ रहा था, कटको मे शात
कल्पना की मार, पथ मे भर रहा था प्रात ।।७।।

शैल से शिवालिनी ले स्नेह सलिला धार
रश्मियाँ भरती शलभ मे चचला सा प्यार
उलझनो मे डोलता था पथिक का विश्वास
पर न जाने हो रहा क्यो, गति मधुर-आभास ।।८।।

आत्म-बोध अशान्त मन का है बडा उद्वेग
चुभ रहा था व्यग-सा, मन मे अपार प्रवेग
प्रणय का लोभी हृदय अब हो गया था क्लात
नयन थे आकुल, जिया व्याकुल, अनत अशात ।।९।।

बुझ न पायेगी कभी क्या वेदना की ज्वाल ?
खुल न पायेगा कभी क्या ग्रथियो का जाल ?
रोग, शोक विषण्ण मन को घेरते चुपचाप
बढ रहे है, पल रहे ह, पाप या सन्ताप ।।१०।।

क्या कभी सभव, मिलेगा मधुर रस साकार ?
क्या कभी भी भूल पाऊँगा, हृदय का भार ?
एक पूजा-गीत रोया, ले शलभ-सा प्यार
एक पूजा-दीप खोया, मुक्ति का उपहार ।।११।।

मृत्यु और विनाश भटके थे जहा अज्ञात
प्रेम प्रणयन की विजय थी, शात था मन शात
क्या उठेगा नाद ब्रह्मानद सा यो प्रात ?
क्या बजेगी वेणु मनमोहन ! पुलक है गात ? ।।१२।।

मुस्कराता जा रहा है चाँद मन का मीत
छिप रहा क्या बादलो मे प्रीत का सगीत ?
एक दिन तो बज रहा था साधना का तार
आज सोया, शात गुजन, है यही ससार ।।१३।।

दहकता होगा वनों की साधना की आग
जागता हो भक्ति का जैसे चमकता राग
यों निरंतर गति प्रगति में आ गया था भाग
उस पथिक के सामने, वह भक्ति का मधुमास ॥१४॥

हर्ष से उन्मुक्त नयनों में चली जलधार
भक्ति-रस में मुक्ति है या मन-मोहन प्यार ?
कष्ट की गहराइयों में, यह उठा प्रतिमान
कौन स्रष्टा था, बनाया दुर्ग का अभिमान ? ॥१५॥

सामने देखी पथिक ने दुर्ग की गुल्जार
कर रही थी प्रीत में प्रण का मधुर मनुहार
मान का गौरव उठाये गर्व से था शीश
विश्व का सम्राट ज्यों होता सभी का ईश ॥१६॥

चन्द्रिका से हीन, तमसाच्छन्न था परिवेश
सो रहा था शिल्प अथवा, जागता संदेश
वीरता का प्राण, दृढ़ता का हृदय साकार
शौर्य का सागर उठा, उत्साह का अम्बार ॥१७॥

वज्र सा भूपर खड़ा है दुर्ग यह चित्तौड़
भक्ति आकर पली, जिसकी वीरता की गोद
दूर से राही लगाये था नयन की कोर
एक दीपक टिमटिमाता था वहीं उस ओर ॥१८॥

यही वह चित्तौड़, जिसमें तेज, निष्ठा, कर्म
यही वह चित्तौड़, वीरों का रहा जो वर्म
यही वह चित्तौड़, शोणित का रहा जो गर्म
यही वह चित्तौड़, वीरों का रहा जो धर्म ॥१९॥

क्या इसी में क्रूरता का हो चुका है नृत्य
क्या इसी में भृत्य भी सब सिंह थे यह सत्य ?
क्या इसी में छद्म, धोखा, कूटनैतिक-ह्रास ?
क्या इसी में हो चुके साके अनेरा रास ? ॥२०॥

क्या यही वह दुर्ग, जिसमे आग ही थी साज ?
क्या यही वह दुर्ग, जौहर का पहिनता ताज ?
क्या यही वह दुर्ग, जिसमे प्रणय का मधुमास ?
क्या यही वह दुर्ग, जिसके वीर रस के सास ? ।।२१।।

याद है चित्तौड, तुमको वेदना के गीत ?
याद है चित्तौड ! तुम हो वीरता के मीत ।
याद है चित्तौड ! तुम सिगार के शृ गार ?
याद है चित्तौड ! तुम हो प्यार के अभिसार ? ।।२२।।

है कहाँ चित्तौड ! तेरी पद्मिनी का द्वार ?
है कहाँ चित्तौड ! जौहर का ज्वलित अगार ?
है कहा चित्तौड ! कु भा का विजय अभिमान ?
है कहा चित्तौड ! गोरा और बादल-गान ? ।।२३।।

कहाँ है वह शौर्य का अवतार वीर प्रताप ?
कहा है चेतक, कहाँ है, शक्ति का अभिशाप ?
कहाँ है वह, स्वाभिमानी रग का परिवेश ?
कहा है जीवन्त वह, क्या हो गया सब शेष ? ।।२४।।

वह खडी देखो, विजय की माल पन्ना धाय
विवश है बनवीर अत्याचार, कौन उपाय ?
कहा वह ताण्डव नटेश्वर का निखरता रूप ?
कहा छाया अमरता की है, कहा वह धूप ? ।।२५।।

कहा है वैभव, कहा है ध्वस का अध्याय ?
कहाँ वह भैरव, कहा वह चडिका का दाय ?
बद क्यो है आज वे पन्ने कहाँ इतिहास ?
सिहरनें होती, जिन्हे कर स्मरण मृत्यु-विलास ? ।।२६।।

कौन कहता, मर चुका तेरा विराग, सुहाग ?
कौन कहता, अमिट हैं तेरी व्यथा के दाग ?
कौन कहता, सो गये तेरे गरम वे साँस ?
कौन कहता, मिट चुकी तेरी विजय की प्यास ? ।।२७।।

तू खडा तो आज जीवित है हमारा मान
तू खडा तो है खडा यह वीर राजस्थान
तू खडा तो वीर-भोग्या तीर्थ का सम्मान
तू खडा तो खडी तेरी वीरता की शान ।।२८।।

दिव्य है चित्तोड ! तेरी यह अलंकृत धूल
दिव्य है चित्तोड ! तेरा ताज सुख का मूल
दिव्य है चित्तोड ! तेरा नाम सिर का मौर
दिव्य है चित्तोड ! तेरा जन्म-जीवन-भोर ।।२९।।

धार हो अजस्र नाविक का शिथिल सगार
या कि मिल जाये उसे विश्वास का आधार
या मिले हो तुम मुझे, ज्यों नाव को पतवार
हे अमर चित्तोड ! सम्बल प्रणय के साकार ।।३०।।

थी तृतीय मुहूर्त वेला रात की सुनसान
गुनगुनाता पथिक सुनता दुर्ग की अनजान
लगा कहने हे पथिक ! कर्मठ बनो प्रणवीर
ज्यों खडा हूँ मैं, तुम्हे लो बाँटता हूँ धीर ।।३१।।

ब्रह्मकाल प्रविष्ट होकर प्राप्त करलो प्रीत
मैं सुनाऊँगा तुम्हे वह प्रणय का उद्गीथ
मोह का उत्सर्ग करना साधना का सार
आन प्रण का मान रखना अमरता है प्यार ।।३२।।

यह वही धरती, यहाँ पर मिटे अनगिन प्राण
यह वही धरती, जहाँ स्फुलिंग उडे गतिमान
वीरता के साथ ही शृंगार का सहवास
है विरोधी पर, पली है तृप्ति के सँग प्यास ।।३३।।

अंतराल वितृष्ण कैसा सुन पडा ध्वनि गीत ?
हो गया आश्वस्त पाकर देवता से प्रीत
रात्रि के निःशेष क्षण, वह हो रही थी म्लान
झड रहे नक्षत्र झडते पात ज्यों पवमान ।।३४।।

भीम चक्राकार थे, वे दुग के प्राचीर
भारतीय विभूति, जिसका शिल्प प्राण अधीर
लगा उठने गगनचुम्बी मन्दिरो से गीत
भर रहा था प्राण मे, सिहरन विमुक्त-अतीत ॥३५॥

टिमटिमाता था शिखर पर, दीप एक ज्वलत
जल रहा ज्यो प्राण मे, अ तस प्रकाश अनत
रात्रि भर जलती रही क्यो ज्योति यह निस्पद ?
पथिक के पीडित हृदय मे उठ रहा था द्वन्द ॥३६॥

कौनसी वह आन करती प्रीति का सचार ?
टूटने पाती नही लौ, स्नेह का ससार
सघन तम सी रात का यह ज्योति-पु ज उदार
क्षितिज का श्रृ गार है या प्रणय का उद्‌गार ? ॥३७॥

दुग ! तूही बोल कैसा दिव्य पुण्य प्रकाश
देखकर क्यो बढ रही सैलाब जैसी प्यास ?
गगन-चुम्बी शिखर कैसा ज्योति का प्रतिमान ?
कौन करता स्वगलोक-विहार सा आदान ? ॥३८॥

खूब उलझा, पर न पाया दीप का इतिहास
डूबता था करुण मन वन प्रश्न का उल्लास
कौन समझाता उसे वह प्रणय का उपहार
जल रहा था खोजने वैसा मधुर सा प्यार ॥३९॥

लग्न की लौ जल रही थी, साध का ससार
था प्रवाहित शील ज्यो, शवालिनी की धार
अजिर था एका त, झिल्ली की वहा झनकार
औ' सुनाई पड रही थी सिंह की हुकार ॥४०॥

सघन वन था, दुग-तापस भर हृदय मे आन
जल रहा था दीप तिल तिल बह रहा पवमान
जागरण का भर रहा था गीत गति सदेश
कह रहा था—'उठो तुमको कम करने शेष' ॥४१॥

ऊँघता था झूमता था दुर्ग यश आपूय
जो कभी हिंदुत्व का था, प्रज्वलित सा सूर्य
और उसके थके चरणो को सँभाल सँभाल
धो रही थी, प्यार ममता से सरित उत्ताल ॥४२॥

कौन सज्ञा दे उसे, वह पथिक था लाचार
जो बनी थी अर्घ्य उसका, औ' गले का हार
नाम गभीरी, भरी थी प्राण मे पर पीड
क्योकि यवनो ने बनाया तट उसी का, नीड ॥४३॥

नगाकार विशाल मदिर ज्ञान के अवतार
जडे स्वर्णिम कलश, जिन पर रश्मियाँ साकार
नगर सोया, जो कभी था शौर्य के अनुरूप
जागता इतिहास उसका, राग-रग अनूप ॥४४॥

दीप की वह ज्योति सरिता प्राप्त करती शेष
ज्यो हृदय के देश मे हो अग्नि गीत प्रवेश
द्वन्द्व पूरित मन पथिक, थे द्वार उसके बन्द
देख पाता तमस मे कैसे वहाँ स्वच्छन्द ? ॥४५॥

प्रेम की वह धूम-रेखा, सौरभित उल्लास
किया अवगाहन पथिक ने कामना थी प्यास
वेदना, समवेदना, भटकन, निराशा, ज्वार
प्यार या अधिकार मन मे जीत थी या हार ॥४६॥

द्वार थे या सात प्रहरी, थे सजग हर बार
ज्यो धरा पर घूमते हो, सप्तऋषि साकार
या दिवाकर दुर्ग के ये अश्व सात अखड
सजग औ' कमठ सबल या फडकते भुजदड ॥४७॥

विकल धूमिल वेश मे आया, जहाँ था द्वार
लगा कहने—'क्या बताओगे अमरता प्यार' ?
स्तभ देखे, दुर्ग की अट्टालिकाएँ भव्य
प्राण मे सौन्दर्य भर, सोचा यही गन्तव्य ॥४८॥

भटक कर आया, जहाँ था आज एक प्रतीक
प्रेम के आँसू, बनाए स्वर्ण की वह लीक
मोह की भटकन जगाती प्राण में सन्यास
या छुडाती विश्व का सुख या बढाती प्यार ॥४९॥

भूलता ही गया राही, सूक्ष्म क्या है स्थूल ?
नयन गाते रो रहे थे, बरसते थे फूल
भक्त जन थे मुदित मन, बिखरे सभी के केश
बसो हे नँदलाल ! मन मे, यह तुम्हारा देश ॥५०॥

पथिक केवल कृष्ण का था, भक्त बेसुध, लीन
तरसता था प्रीति को, ज्यो प्यास जल बिन मीन
प्रीति प्रणयिनी पर अखडित, क्योकि थी वह भक्त
कृष्ण की, नँदलाल पर थी, जो बडी अनुरक्त ॥५१॥

मिल गया था साध्य, प्राणो मे उमडता त्याग
भक्ति की अवतार मीरा मे, जगा अनुराग
सामने देखा खडा था दीप्ति का ससार
एक मदिर, भ्रमर जिसके, भक्त गण गु जार ॥५२॥

दुर्ग पर थी अस्त व्यस्त पुकार पूजा गीत
प्रणयिनी मा मौन थी, पर थी बडी ही प्रीत
पूछने यो लगा पागल प्राण मे भर प्यास
क्या यही चित्तोड है, था यही माँ का वास ? ॥५३॥

वही माँ, जिसने उठाया था लगन का ज्वार
वही माँ, जिसने मिटाया द्वेप का ससार
वही माँ, जिसने मिटाई राजकुल की रीत
वही माँ, बदनाम थी गोविंद की पा प्रीत ? ॥५४॥

प्रीति मे बदनाम कैसा भूलता ससार ?
प्रीति मे परिणाम क्या, राग का अधिकार
प्रीति मे दुख-दद, क्से मिले अत्याचार
प्रीति मे क्यो मिला माँ को, घोर कारागार ? ॥५५॥

प्रीति भी गोविंद की थी, विश्व जिसका राग
ज्योति छूकर हाथ मे माँ के पड़े थे दाग
हाय! इस निमम जगत् का क्लेशमय व्यवहार
भक्त का हो जाय, जीना भी जहाँ दुश्वार ? ।।५६।।

लोक में आलोक पाकर भूल कैसी भूल ?
प्राण मे मधुमास पाकर शूल कैसे शूल ?
प्रीति मे विश्वास पाकर हार कैसी हार ?
प्यार मे आराध्य के भी दर्द अत्याचार ।।५७।।

सामने देखा पथिक ने दिव्य मंदिर एक
कृष्ण का मिलकर सभी थे कर रहे अभिषेक
शुभ्र वस्त्रावृत्त, मुख मण्डल करुण सी कांति
भव्य माया पर खड़ी वार्धक्य की वह शांति ।।५८।।

था पुजारी मग्न, नयनो मे भरा था प्यार
भीड़ भारी थी, भरी थी भक्ति की गुंजार
कई ऐसे थे कि जिनके चित्त थे अति म्लान
कर रहे उपहास, उनका आगया अवसान ।।५९।।

कह रहे कुछ 'यहाँ मीराँ ने किया था प्यार'
कह रहे कुछ—'मत चलो बदनाम है यह द्वार'
एक बोला—'राजरानी ने किया क्यों नृत्य ?'
एक बोला—'हीन थी, अभिसार करती सत्य' ।।६०।।

सुन रहा था वह पथिक परवश बड़ा भयभीत
भक्त बन आराध्य का उपहास करते मीत !
नृत्य या अभिसार कैसा मुक्ति का था दान
प्यार कैसा, हार कैसी, प्रीत का मधु पान ।।६१।।

सोच लो तुम भटक जाओगे हुए उद्भ्रान्त
ज्यो भटकता पात झंझा मे अपार अशान्त
देश के मन मे भरी श्रद्धा महान् उदार
गर्व-गौरव कर रहे लघु, क्या यही आभार ? ।।६२।।

कुछ उदार पुकारते भर प्राण मे रसधार
हाँ सुनाग्रो गीत बाबा ! प्रीत का साकार
पथिक प्रीति अधीर, सज्ञा हीन थे सब दोष
अब न थी मन मे कुटिलता, छद्म, छल, आक्रोश ।।६३।।

चेतना मे उतर उसने सुनाया अभिप्रेत
हो गया मैं दूर, 'जय' का सुना स्वर समवेत
हा सुनाग्रो 'दरस की प्यासी' मधुर सगीत
या सुनाग्रो 'राम का वह रतन' गीत पुनीत ।।६४

स्वप्न डूबे प्राण म मचले विकल्प विकार
कह उठा 'क्या घणा करते यह ग्रलौकिक प्यार'
है सभी के जीव परवश, खो चुके है राग
इसीलिए ही जल रही, मन मे विरह की आग ।।६५।।

चादनी मे विष मिला तुम जान लोगे मीत !
तो समझलो मोह का पर्दा पडा ग्रविनीत
प्राप्ति के पहले हृदय मे तप्ति का विश्वास
यदि नही मिलता, न बनते सृष्टि औ' आकाश ।।६६।।

भक्त बनकर भक्ति का यो जो करे उपहास
कुटिल, कामी, हीन उसका भटकता उल्लास
भक्त का जीवन बडा है, भक्ति पथ से प्यार
जीत लेता क्योकि वह, आराध्य का अधिकार ।।६७।।

मातृ मन्दिर मे बढा ग्रविवेक ग्रौर विषाद
विरह-पूजा गीत सुन रोये हटा उन्माद
वह पुजारी स्नेह से कहने लगा—'तुम कौन ?
गा रहे समझा रहे, मा के तपी ! तुम मौन ।।६८।।

'कुटिल कामी हूँ उजाडे ह ग्रनेक नीड
इसी से बाबा बढी है इस हृदय मे पीड
पाप का साकार ही प्रतिमान हूँ सम्भ्रा त
खूब भटका, पर न हो पाया दुखी मन शा त' ।।६९।।

दूर से आया, सुना इस द्वार प्रभु का वास
भक्ति औ' अनुराग में डूबा यहाँ हर सांस
प्रीति का सरगम जहा बनता अटल आधार
कृष्ण औ' माँ का जहाँ होता सदैव विहार ॥७०॥

तुम सुना दो वह कथा, अमरत्व गान पुनीत
तुम सुना दो, भक्तिमय करुणा भरा संगीत
तुम बता दो, तन बडा उद्भ्रान्त है उद्भ्रान्त
तुम बता दो, मन बडा ही श्रांत और अशान्त ॥७१॥

तुम सुना दो, प्रणयिनी की भक्ति का मधुमास
तुम सुना दो, राजरानी का अमर सन्यास
तुम दिखा दो, राह मन को, और लो बलिदान
मुझे मीरा प्रीति, मन्दिर पर बडा अभिमान ॥७२॥

थी दिशाएँ दीप्त, सिंहासन सजा था एक
और मंदिर में हुआ था, कृष्ण का अभिषेक
दिव्य सा द्रष्टा सुनाता, पुण्य काव्य महान्
पथिक बैठा सुन रहा, करता गया मधुपान ॥७३॥

नव प्रभात सजा रहा था रश्मियो का थाल
चेतना का अर्घ्य, वैभव से भरा पाडाल
झूमते थे रसिक गण भर प्राण मे आभास
सिहर उठती कुमुदिनी ज्यो, चाँद से ले हास ॥७४॥



उद्‌भव

नव किरण के सग प्रतिदिन चल रहा आख्यान
भक्त गण प्रमुदित, पथिक अब पा गया सधान
दिव्य वक्ता, वृद्ध ऋषि सा, तप पूत महान्
भक्त श्रोता कर रहे माँ का अमर गुणगान ॥१॥

शा त था शृ गार जीवन मे भरा उल्लास
बुझ रही थी किन युगो की, तीव्रतम वह प्यास
गीतकार सुना रहा था मेदपाठी गान
माधवी थे कु ज, मुस्काते हरित उद्यान ॥२॥

तन रहे थे इन्द्र-धनुषी रग पुष्प वितान
कर रहे थे खग सरस कलरव, विविध उपमान
गा रहे थे गीत किंवा कर विविध अभिसार
अप्सराएँ नाग, किन्नर भर हृदय मे प्यार ॥३॥

मेडता था राज्य, उनका राव दूदा नाम
भक्ति औ' सगीत के अवतार थे अभिराम
साधु-सेवा, न्याय-शासन, वीरता का वेष
प्राण मे उत्सग, प्रण मे प्रजा पालन शेष ॥४॥

मन्दिरो मे साधना थी, मेडता शृ गार
शस्य श्यामल था धरा का मागलिक ससार
रत्न वीरमदेव जैसे, राजवी थे वीर
रत्न का था ग्राम कुडकी, थे बडे गभीर ॥५॥

प्यार के साकार दर्शन, भक्ति के अवतार
रावराणा न्याय के प्रतिरूप भीमाकार
श्वेत थे सब केश, वे सौजन्यता की मूर्ति
प्रजा पालन, पुरन्दर ज्यो, कर रहे थे पूर्ति ॥६॥

रत्नसिंह उदार, उनके पुत्र थे प्रणवीर
वंश था राठोड, सब नरसिंह थे रणधीर
आश संतति की भरी, मन मे बढी दिन रात
पर न आया वीर के घर मे खुशी का प्रात ।।७।।

कृष्ण ! माधव ! भक्त वत्सल ! मोह का यह जाल
इस जगत की रीति है, मैं भी रहा हूँ पाल
हे मुकुन्द ! लुटा मुझे दो, रश्मि एक उदार
जो उठा दे शान्त मन में, जिन्दगी का ज्वार ।।८।।

वर्ष बीते, एक दिन आई खुशी की रात
शरद की पूनम, मधुर-सी चांदनी से स्नात
राधिका अवतार ले, उतरी धरा पर प्रात
कौल थी 'पूरब जनम की' पुलक मय था गात ।।९।।

कौमुदी से भर उठे थे, झिलमिलाते ताल
श्वेत-वसना नायिका के रश्मियों के जाल
शारदी पूनम, किया गोविन्द ने था रास
ब्रह्ममाया का हुआ था, मिलन-प्रेम-विलास ।।१०।।

सप्त रंगो ने बसाया रास का संसार
ग्राम कुडकी मे भरी, अनुराग की झंकार
'रास पूनो जनमिया री', राधिका अवतार
प्राण मे उत्सर्ग भर जग का हटाया भार ।।११।।

अमल कोमल बालिका थी ज्योति का प्रतिरूप
मधुरता साकार, ज्योत्स्ना-गीत एक अनूप
सान्द्र थी मुस्कान मन की, और विधि का राग
झाकता था प्राण मे से, एक अमर-सुहाग ।।१२।।

मेघ की सुषमा, छलकते ताल का आकार
प्यार की कलिका, विभव, महिमा, प्रशान्त-पुकार
लाज का मोती, गुलाबी प्रात का अनुराग
एक भोलापन मिला था, रत्न के ये भाग ।।१३।।

नाम मीरा, थी कला औ' रश्मियो की माल
एक छोटा छन्द, प्राणो का नवल सा लाल
स्वप्न गीतो का अलौकिक था मधुर-आभार
साध का सरगम, अमर-सगीत का अवतार ।।१४।।

कापती कलिका, मधुर सुषमा, दृगो की काति
बालिका मीरा हृदय की, शबनमी थी शाति
क्या विदित था, यही मीरा प्रणय का अवतार
क्या विदित था, यही हर लेगी व्यथा का भार ।।१५।।

राजकुल का चांद, मां के अक का शृ गार
रूप का वैभव, चपल-आभा, धरा का हार
काव्य की शोभा, शरद की चांदनी का गीत
नायिका राधा, अमर साहित्य की थी प्रीत ।।१६।।

करण, सजल अपार-महिमा बढ रही दिन रात
ज्यो मृणाल विशुद्ध जल से बढ चले सुस्नात
गौरवर्णी, प्रीत के नवनीत का सा गात
वह कला बढती गई यो वर्ष बीते सात ।।१७।।

राज महलो के अजिर का एक भोला फूल
झूमता खिलता किलकता रूप था अनुकूल
सात स्वर से ज्यो बना हो, गीत स्वर-साकार
सात वर्षों ने सँजोया बालिका का प्यार ।।१८।।

एक ही सगीत था वह, रुदन उससे दूर
शाति जिससे सद्य प्रसरित, भवन मे भरपूर
नगर मे भी दीप की इस ज्योति की मनुहार
बढ रही थी, कान्ति, शोभा, श्री प्रशान्त, अपार ।।१९।।

सभी पुरवासी विकल थे, प्रीत का उत्साह
भर उठा था हृदय मे, थी देखने की चाह
बालिका या लोक देवी, स्नेह का अवतार
या नगर का प्राण, या वह कला की किलकार ? ।।२०।।

रागिनी मन की, हृदय के भाव या विस्तार
या कि सौरभ, कान्ति या, उद्दाम वेग अपार
या अजिर की ज्योति या प्रासाद का उल्लास
पुलकता पावन परम या रूप का अभिलाष ? ।।२१।।

स्वर्ण-पाटल से बना, शतदल खिला है आज
ज्यो अलौकिक साज मे, लिपटी वधू की लाज
या गगन ही चमने आया क्षितिज का गात
पा गया है या भवन ही, शतजमी यह प्रात ? ।।२२।।

यह दिशाओ सँग उठी, जागी रतन के साथ
जन्म लेकर ज्योति मीरा बढ रही दिन रात
राव जी थे हर्ष से पागल, प्रभो ! यह दान
ज्यो दिया, त्यो ही जगाना प्राण मे सम्मान ।।२३।।

भक्त राणा के स्वरो की भक्ति से हो प्रीत
बालिका थी देखती, प्रतिमान सुघड, पुनीत
यही गिरधर है, यही गोपाल जग के ईश
यही पालक ह धरा के नाम है जगदीश ।।२४।।

यही हैं बेटी ! पुकारो—हे मधुर गोपाल !
मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारे चरण मे प्रतिपाल
बालिका मीरा जगाती थी, बडा विश्वास
राव दूदा झिलमिलाते, सरस रस अभिलाष ।।२५।।

भोर होते ही विकल हो बोलती मृदुबोल
उठो बाबा ! चलो गिरधर, मधुर ध्वनि अनमोल
बसो हे नदलाल ! हे गोपाल मन मे, आन
तुम्हारी मेरी पुरानी जान है पहिचान ।।२६।।

बीतते थे दिवस ऐसे बढ रही थी कांति
बालिका थी या भवन की सुस्मिता विश्रान्ति
रूप की रेखा, नयन की एक मीठी बात
देख विग्रह विकल होती बालिका दिन रात ।।२७।।

यालमन मे तीव्र सी निष्ठा सजा विश्वास
डूवता जाता मधुर-मन भक्ति का आभास
राजसी वैभव, अलौकिक साधनो के जाल,
स्वर्ण की आभा, जगाते ये हृदय मे ज्वाल ॥२८॥

एक दिन सहसा उठा वह पीर का तूफान
राजरानी का हुआ प्राणान्त, दु ख का भान
यालिका मीरा विहोना मातृ का आलोक
रुदन कर हारी थकी, मन वेदना भर शोक ॥२९॥

राजरानी रत्न के मन का मधुर ससार
शील की देवी, हृदय की रागिनी साकार
चल वसी, वह व्याधियो का हो गई श्रृङ्गार
काल कवलित मा ! कहाँ पर कर चली अभिसार ॥३०॥

हो गया सतप्त मन, पाकर अमित आघात
वीतती जाती दु खो की रात, होते प्रात
राव दूदा ही वने थे, पितृ, माता साथ
अब सुनाते थे वही, सब प्रीति प्रभु की वात ॥३१॥

रावजी से एक ही वह प्रश्न करती वाल
मा कहा है, कहो वावा !, आसुओ का जाल
रावजी विश्वास देते, पर न भूली वाल
वर्ष दस बीते न विसरी याद, माँ की साल ॥३२॥

हाय मा ! तुम हो कहाँ, मैं हूँ दु खी, बस एक
कष्ट, पीडा, वेदना, आघात प्राण अनेक
रावजी कहते उसे यो—'रो न वेटी मोह
यही है ससार नश्वर, यही ऊहापोह' ॥३३॥

अमरता भी गर्व करती लिए मा का प्यार
माँ प्रवल है, माँ सवल है, माँ अमर अधिकार
मातृ मृदुला है, खुला है, मा तुम्हारा द्वार
माँ यहाँ लौकिक, अलौकिक, पर विषम ससार ॥३४॥

मां ! तुम्हरा स्नेह ध्रुव सा, है अटल यह प्यार
मां ! तुम्हारा स्नेह मधु-सा है धरा का हार
मां ! तुम्हारा स्नेह वसुधा का लिए है साज
मां ! तुम्हारा स्नेह वत्सलता हृदय का ताज ।।३५।।

मा ! तुम्हारा प्यार चदा-सा, अमर सब काल
मां ! तुम्हारा प्यार गगा-सा, यहाँ उत्ताल
मां ! तुम्हारा प्यार है, ज्यो स्वग का मधुमास
मां ! तुम्हारा प्यार है, ज्यो स्वर्ण-शिखर प्रकाश ।।३६।।

मां ! तुम्हारा अक, ज्यो शीतल नदी की गोद
मा ! तुम्हारा अश है, पीयूप पूण पयोद
मां ! तुम्हारे अक मे है, यशोदा की काति
मा ! तुम्हारे अक मे है, सौरभी-विश्राति ।।३७।।

मां ! तुम्हारे नयन मे, कैलाश का अभिसार
मां ! तुम्हारे नयन मे, अनुराग, राग-विहार
मां ! तुम्हारे नयन मे है, हास और विलास
मां ! तुम्हारे नयन मे है, भक्ति का उल्लास ।।३८।।

मां ! तुम्हारे प्राण मे है, जलधि का विस्तार
मां ! तुम्हारे प्राण मे है, शील का ससार
मां ! तुम्हारे प्राण मे हैं, शिवि, दधीचि महान्
मां ! तुम्हारे प्राण मे हैं, मनु धरा के दान ।।३९।।

मां ! तुम्हारी एक चितवन, गीत की झकार
मां ! तुम्हारी एक चितवन, मोक्ष का उपहार
मां ! तुम्हारी एक चितवन, रास का ससार
मां ! तुम्हारी एक चितवन, जीव ब्रह्म उदार ।।४०।।

मां ! तुम्ही ने ही जगाई, सृष्टि मे यह प्याग
मां ! तुम्ही ने ही बनाई, दृष्टि जग मे श्राद्ध
मां ! तुम्ही ने ही मिटाई, यातना अनुदार
मां ! तुम्ही ने ही बनाई, मातृ-लीला, हार ।।४१।।

मां ! तुम्ही हो प्राण मय, प्रासाद ज्योति अनूप
मा ! तुम्ही हो पूर्ण केवल, अमल कोमल रूप
माँ ! तुम्ही नवनीत, मन की प्रीत सुधि का गीत
मां ! तुम्ही सौरभ, तुम्ही नभ औं' जगत की रीत ।।४२।।

मा ! तुम्हारा वण मेघो मा, सजल है प्राण
मां ! तुम्हारा सत्य शिव सुन्दर स्वरूप महान्
मा ! तुम्हारा प्राण, चिर नूतन स्वरूप विधान
मां ! तुम्हारे विष्णु, शिव, अज रूप है, अनुदान ।।४३।।

शाति दो हे मां ! करूँ मै विश्व का कल्याण
शाति दो हे मां ! करूँ मै भक्ति, जग का त्राण
शाति दो हे मा ! बनें सब कम-योगी वीर
शाति दो हे मां ! अटल हो देश-सेवक धीर ।।४४।।

नित्य ही मा पर बनाती छन्द, मीराँ बोल
हृदय से गाती सुनाती गीत ये अनमोल
और बाबा थे बताते कृष्ण को यह राग
जग उठे हे प्रभु ! हमारे भजन के ये भाग ।।४५।।

भक्त जन आते मदा, ले कृष्ण का सगीत
राव राणा ये कराते, भक्ति उन पर प्रीत
और दो आखे मधुर से प्रणय का ससार
देखती जाती सजाती प्रेम का उपहार ।।४६।।

ज्यो युगो से मिल न पाया हो कभी भी हास
ज्यो युगो से मिल न पाये प्रीत का आभास
ज्यो तडपते आसुओ को दद का उपमान
ज्यो न मिल पाये हृदय को जिन्दगी का गान ।।४७।।

या न खिल पाये कभी कलिया कटीली डाल
या न मिल पाये, मधुर गौरवमयी जयमाल
या न बुझ पाये, धरा की वामना की ज्वाल
या कठिन रोगी न पाये, स्वस्थ औषधिपार ।।४८।।

त्यो मिली थी प्रीति, मीरा को हृदय आलम्ब
जल उठा था राग का वह, ज्योति दीपस्तंभ
चल पड़ा था बावला मन, राह एक अनंत
चल रहे जिस पर युगो से भक्ति पाने संत ॥४९॥

उठ रहा था शान्त मन मे भक्ति का वह ज्वार
बढ रहा था ज्यो नदी के बाढ का आकार
बन रहे थे मोह के प्राचीर या गोपाल
थे जगाते बालिका मे प्रीति के जजाल ॥५०॥

रावजी प्रशात थे, पर भक्ति का यह बीज
बन रहा था पुष्प-पादव, जिन्दगी से खीझ
भक्ति की यह किरण, अब फैला रही थी हाथ
चल रहा गोविन्द का अनुराग उसके साथ ॥५१॥

कृष्ण ही उत्सव, उन्ही के नाम का त्यौहार
राज वैभव हार कर नत था, उसी के द्वार
कृष्ण ही जीवन, वही तन मे, उन्ही के सास
कृष्ण ही अग, कृष्ण ही जग, कृष्ण-मय-अधिवास ॥५२॥

कुमारी की किलक से प्रासाद के प्राचीर
कभी डर जाते, पुलक से डोल उठता धीर
सभी पुरवासी जगाये थे बडा विश्वास
राजरानी की अमल दुहिता, धरा का हास ॥५३॥

महाश्वेता-सी जहा यह जायेगी वह प्रान्त
धन्य होगा धन्य, गूँजा, भवन हो उद्भ्रान्त
युगो से अभिशप्त लोगो को मिलेगी शाति
युगो से धूमिल धरा को मिल सकेगी काति ॥५४॥

दास दासी, राज-वैभव, छलकता था प्यार
राग-रगीनी, सभी अभिसार थे तैयार
मेडता मे नाचता था, वैभवी-शृंगार
झूमते थे, राजपूती शान से दरबार ॥५५॥

सजग थे प्रहरी, बडी निष्ठा बडा सम्मान
रत्न, हीरक-जटित स्वर्णिम, भवन का विज्ञान
सुख सभी हो इसलिए दुख आ न पाता पास
हो न पाता ज्ञान, उसके रूप का आभास ॥५६॥

क्लेश पीडा दीनता से युक्त वह ससार
झूमता था बालिका के प्राण मे हर वार
हे मधुर गोपाल ! कब होगा यहाँ उद्धार
यह अमर पीडा मिटेगी कब हृदय का भार ? ॥५७॥

'तुम न आओगे' करेगा प्राण तुमसे मान
तुम न आओगे, हरेगा कौन सकट प्राण ?
यह अलौकिक सुख मुझे है शूल, हे गोपाल !
युगो से जलने लगी है, इस हृदय मे ज्वाल' ॥५८॥

बढ रही थी यह कली, औ' बन रहे आघात
तोड लेगा कुसुम कोई, कब बढा कर हाथ
खिल न पाया प्राण की, इस मधुरिमा का फूल
हो न पाया ग्रीष्म शीतल, जिन्दगी का कूल ॥५९॥

बालिका ने एक दिन देखी सजी बारात
पूछ बैठी—कहाँ वर, मेरा बताओ तात !
हर्ष डूबे, अश्रु भीने, रावजी के बोल
कृष्ण या गोपाल ही वर तुम्हारे अनमोल ॥६०॥

झूमता वैभव सजग और बोलते सवाद
स्वप्न देखा, बालिका ने क्षितिज डूबा चाद
सजाकर बारात तारो की गगन पर आज
कृष्णा बन दूल्हा चले, सरगम सुनाते साज ॥६१॥

बढ रहे थे प्राण के साथी, मधुर-मुस्कान
थी रूपहली रात, गाता फिर रहा पवमान
रजत का ससार ज्योत्स्ना, बाँटती थी प्रीत
एक ब्रजबाला बनी दुल्हिन, मधुर सगीत ॥६२॥

दीप दो ये बढ रहे, जो एक होने पास
तार दो यों मिल रहे थे, प्राप्त कर उल्लास
राग दो दो बढ रहे थे, प्रणय का मधुमास
दो विहँग श्रय मुक्त होकर ले रहे थे साँस ॥६३॥

कृष्ण सँग परिणय हुआ, सम्पन्न वरे आज ?
प्रणयिनी मीरां, पडी भाँवर, सजा घर साज
झूमता था चाँद पागल, मिल गया था मीत
नयन मे गोपाल, मन मे प्रीत का था गीत ॥६४॥

प्यास से व्याकुल रहा हो पथिक कोई एक
या कि मिल जाये उसे, जल का वही अभिषेक
ज्यो बढाये हाथ औ' फिर टूट जाए पात्र
स्वप्न टूटा बालिका का, कप डूबा गात्र ॥६५॥

एक निश्चय एक आशा मे भर थे प्राण
और दृढ होता गया, गोविन्द का परित्राण
एक लौ 'लागी लगन हरि चरण में' अज्ञात
एक प्रीति उदास मन को हो गई थी प्राप्त ॥६६॥

'स्वप्न मे परण्या मुरारी' दिव्य अचल सुहाग
प्रणयिनी गिरधर मिले, ज्यो भोर अरुण-पराग
देवता! हे प्राण! प्रियतम! हे अमर-अधिकार!
इस अकिंचन प्राण को है, श्री-चरण से प्यार ॥६७॥

रावजी ने सुना, बोले—'स्वप्न् है जजाल
स्वप्न् मृगतृष्णा कुमारी, स्वप्न् है वह व्याल
काट लेता जिन्दगी को, यह भयावह जाल
या जला देता, हृदय को साल देता साल' ॥६८॥

सत्य तो यह स्वप्न् होता, प्राण का आधार
या कि रूपक मोह का, या चित्रमय ससार
या कि नवजीवन धरा पर, पालता है सत्य
या मिटाता हीनता, या इन्द्रधनुषी नृत्य ॥६९॥

स्वप्न् ने मन मे जगायी थी, प्रणय की पीड
मुग्धकारी गीत की ज्यो, हो मधुर सी मीड
स्वप्न क्या था, बालिका का, था सहारा एक
डूबता ही गया मन, खिचती गई प्रण रेख ।।७०।।

ज्यो शलभ का प्राण जीवन, ज्योति उसका प्यार
सिंह शावक को मिले या भक्ष्य का आधार
गीत को ज्यो छन्द, मिल जाता अमन्द उदार
अश्रु को गति, हीन को मति, पिकी को मनुहार ।।७१।।

तमस को ज्योत्स्ना, धरा को शाति का उपहार
स्नेह दीपक, मृत्यु को निर्वाण का अभिसार
धैर्य साधक को, विकल को आश का आधार
त्यो मिला अनुराग मीरा को मुरारी-प्यार ।।७२।।

अब पहेली जिन्दगी को, सुख मिला था एक
पा गया पाथेय, गति के प्यार-गीत अनेक
बालिका मे फूल-सा, बढता गया -सौन्दय
ज्यो उरेहा हो, हृदय ने, प्रणय का सौकय ।।७३।।

ज्यो धरा के प्राण मे अम्बर बसाता नेह
सत्य मे सुन्दर, शिव मे, सत्य का वह मेह
घायलो को हास मिल जाये, युगो की आश
या कि इस छलिया जगत को, मृत्यु का उपहास ।।७४।।

प्राप्त कर उस प्रीति का मबल, हृदय का हास
आ गई वय-सन्धि पर, उस बालिका की प्यास
चिन्ह यौवन के सुढर, छाये अशात अपार
लगी बढने उस शिखा मे प्रणय की मनुहार ।।७५।।

प्रीति की आभा सिमट आई दगो मे बन्द
विकसने या चटकने से, विकल रूप अमन्द
लाज का शासन, मुकुर-मन, रूप का यह दान
राग मे रँगने लगी, उसकी मधुर मुस्कान ।।७६।।

11, 40

रेशमी-रेखा लजीली, नयन वठे घेर
ज्यो उषा के प्राण पर, अनुराग रूप उजेर
नयन कोरक मे भरा, सौन्दर्य का सभार
ज्यो अरुणिमा क्षितिज तट पर, फैलती साकार ।।७७।।

प्राण कोमल, एक हलचल भर उठी अनाथ
भावना छाया सदृश, ज्यो देह के है साथ
उमडता यौवन प्रवाहित, ज्यो नदी की धार
पूर्णिमा के चांद, ज्यो उफनाय पारावार ।।७८।।

कौन प्रहरी बन गया था उस हृदय का आज ?
छेडता है तार क्या कोई मिलाकर साज ?
राज महलो से निकलना लाज के प्रतिकूल
मन ! बता कैसे मिलेंगे अब पिया को फूल ।।७९।।

देखकर यह बाढ बढती, नित्य नूतन प्यास
रोकते बाबा-न जाओ, मन्दिरो के पास
अब हुई तुम युवा बेटी ! राजकुल की आन
नष्ट होता और मिटता मानसी अभिमान ।।८०।।

शांति अभ्याहन करो, तुम साधना गृह आज
एक गिरधर ह सभी आओ सजाओ साज
'आश सांधों के दरस की मती बरजो तात !'
सघन तम के बिना कब होता प्रकाशित प्रात ? ।।८१।।

राव दूदा एक चिता से हुए आक्रान्त
क्यो न भाता बालिका को राजकुल का प्रान्त ?
बालिका अब बढ रही थी भक्ति पथ अवदात
चाद नभ मे फैलता ज्यो पूर्णिमा की रात ।।८२।।

बिन्दु पर आका प्रभो ने सिंधु का ससार
सिन्धु मे सोया हुआ है लहर का आकार
लहर में खोया हुआ उत्सर्ग का यह खेल
खेल मे है जिन्दगी औ' मौत का यह मेल ।।८३।।

क्षितिज सा सौंदय, मंजिल-सा अटल विश्वास
भरा था मन मे, बढी यो अमरता की प्यास
रुदन करती याद मे, उस साधिका का प्यार
बाल विधु-सा बढ़ रहा था, पूर्णता का भार ॥८४॥

साध जगती प्राण मे होती रुपहली रात
मन स्वय करने लगा था, अब स्वय से बात
हो न सकता व्यक्त कुछ भी विरह का यह मान
क्यो दिया गोविंद ने तव प्रीति का मधु दान ? ॥८५॥

अश्रु डूबा हो गया, अनुताप का यह गीत
प्रार्थना करती सदा गोविन्द से पा प्रीत
रस छलकता जो समर्पण मे, कहाँ वह प्राप्त
अह क्या जाने उसे, यो कह रहे हैं आप्त ॥८६॥

जब लगाई प्रीत तुममे मान कैसा नाथ !
बढ चलूँगी अतल जल मे भी, तुम्हारे साथ
प्राण मे झझा भरूँगी, प्रीत मे विश्वास
कौन-सा परिणय-मिलन, हो जाय सब-विनाश ॥८७॥

रूप मे घुलकर तुम्हारी कौमुदी का साथ
त्यागना दुश्वार है, क्यो प्राण ! पकडा हाथ
कृष्ण ! हे माधव ! तुम्हारी प्रीति का मधुपान
पीर तुम पीते परायी, बन हिमाशु महान ॥८८॥

है वही स्मिति, जो करे जगमग हृदय के प्राण
सजल अन्तस्तल बने जीवंत, जो पाषाण
यदि न खिलता पुण खुलकर मानसी यह फूल
तो न अधरो पर कभी मुस्कान उगती भूल ॥८९॥

अमरता के दूत ! माधव ! प्यास कैसी प्यास ?
जल रहे क्यो अधर मेरे, बस तुम्हारी आश
इस तरह से साधिका के कट रहे दिन रात
ज्यो उजाला छिन्न करता है तमस के गात ॥९०॥

बालिका के साथ [illegible], क्या [illegible] हो गए
हो गये थे सब सभी, [illegible] और [illegible]
एक गोपी [illegible] था [illegible] [illegible] [illegible]
मंदिर का आधार करता हूँ [illegible] ॥११॥

आज बालिका, [illegible] [illegible] थी, [illegible] का [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] कर [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] गई थी दुःख-सुख में, बालिका की [illegible] ॥१२॥

और बालिका [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]
हे मुकुन्द ! उठो, [illegible] भक्ति की [illegible] [illegible]
हे प्रभो ! इस बालिका का [illegible] [illegible] [illegible]
हे दयामय ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१३॥

[illegible] रहा था दीप [illegible], [illegible] प्रीत
[illegible] रहा था [illegible] में, [illegible] [illegible] का [illegible]
[illegible] का [illegible] [illegible] का [illegible] ही आधार
कृष्ण! कृष्ण! मुकुन्द! माधव! [illegible] का [illegible] ॥१४॥

पुजारी प्रतिदिन सुनाते थे, [illegible] [illegible] [illegible]
गूँजता था [illegible] में, उस युग का [illegible] [illegible]
भक्त साधक [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible]
मधु-मीरा पवित्र करता, बालिका का प्यार ॥१५॥

परिणय

साधिका के प्राण मे भरता गया आक्रोश
और बनता ही गया, वह प्यार भीषण दोष
म्लान होते गए मन के स्वप्न औ' शृगार
रूठते ही गए प्राणो के मधुर अभिसार ॥१॥

प्यास मे डूबी हृदय की रागिनी थे छोर
आस मे आँखें लगी रहती प्रभो की ओर
रत्न के मन मे उदासी के तने थे जाल
बाध लेती ज्यो हृदय को उलझ मुक्तामाल ॥२॥

रात दिन कब बीत जाते हो रहे क्षण भार
राजसी वैभव सभी थे, टूटते अधिकार
लुट गया था रत्न का मगल मधुर ससार
गिर पडे थे टूटकर सगीत के सब तार ॥३॥

विकलता थी, विवशता थी, शक्ति कण थे मौन
सो गया व्याघात बन कर शूल-सा वह कौन ?
राजरानी का हुआ था स्वग मग विहार
शून्य-सा लगने लगा अब राजसी, सिंगार ॥४॥

राग खोये खिन्न मन का अश्रुमय था गान
सामने रहता सदा उसका मधुर प्रतिमान
झाँकती थी एक चिता, रत्न के आ पास
जी रहा था इस तरह, मन मे अटल विश्वास ॥५॥

और उसके साथ था कर्तव्य का सदेश
देवता का दीप तो जलना अभी है शेष
आसुओ के साथ पहुँचे रावजी के पास
ली चरण छू दग्ध मन ने, एक सुख की साँस ॥६॥

मिल गया हो ज्ञान को ज्यो भक्ति का उल्लास
रावजी ने पा लिया था, एक अमर प्रकाश
प्राण मे प्रण के समीरण ने किया अधिवास
कष्ट, पीडा, वेदना का अब न था आभास ।।७।।

मृत्यु, सुत ! अमरत्व का ही दूसरा है नाम
भूलता जग, यह नही भ्रूभग विधि का वाम
हास है यह काल का, अभिनय, उदार, ललाम
नाश या निर्माण नैसर्गिक क्रिया का काम ।।८।।

रत्न हो निश्चित्त, लेकर सान्त्वना अनुराग
बालिका से कह उठे—'जागे तुम्हारे भाग
प्राण मे जब तक न भरती लग्न की मनुहार
शील को तब तक न मिलता, प्राप्ति का शृङ्गार ।।९।।

डूबता ही गया यौवन भक्ति मे तल्लीन
भूलता ही गया मदिर-प्रमाद मन हो क्षीण
भक्ति-पथ की थी विजय, शृङ्गार भूला राह
कृष्ण से परिणय रचे, बस थी हृदय की चाह ।।१०।।

राग ही बढता गया, अध्यात्म से कर प्रीत
राग ही जगता गया, वैराग्य के गा गीत
राव दूदा और बेटी भक्ति के अवतार
झूमते थे कृष्ण के आकार मे साकार ।।११।।

आ गया था ज्वार, सागर मे अपार अशान्त
रोकता फिर कौन, होने लगे मन उद्भ्रात
प्यास-पारावार बढता, ले अमर जब भूख
तोड देती भव्य प्राचीरे हृदय की हूक ।।१२।।

नाम सकीतन मधुर नतन बना आधार
साधु सतो की पुजारिन हो गई साकार
कथा श्रवण, विशुद्ध सेवा, मधुर भाव पुनीत
प्रीति धर्म प्रणीत कर मन से उठा यह गीत ।।१३।।

भोग पाते कान्त-कृष्ण, सदा उसी के हाथ
अहर्निश मधुपान करते थे उसी के साथ
साध्य को रहना पडेगा भक्त के आधीन
क्योंकि उसका शुभ्र जीवन भक्ति पथ आसीन ।।१४।।

साथ सोते, साथ उठते, राधिका के कृष्ण
साथ रोते, साथ हँसते, साधिका के कृष्ण
साथ खिलते, साथ मिलते, प्रीति-रग-रसेश
साथ लेते, साथ देते, भक्ति का सदेश ।।१५।।

बो दिया वैराग्य, साधक-कृषक ने हो शात
प्रीति की धरती, अमर सगीत जीवन कात
भक्ति का अकुर, प्रणय-फल की लगी थी आश
गीत औ' सगीत से साकार था सन्यास ।।१६।।

दूध जैसी चादनी मे एक नन्ही नाव,
स्वप्न् मे आती उसी के पास, बनकर भाव
थिरकते थे, झूमते थे, पाद, नूपुर, गान
किलकते, खिलते, मचलते, कृष्ण के प्रतिमान ।।१७।।

नित सुनहले भोर होते, प्राण मे उल्लास
शबनमी होती निशाएँ, बाँसुरी की प्यास
खुले कुन्तल, ज्योति मुख, ज्यो चाँद तारे रास
धूप चम्पक सी सरस होती, सुधा मय सास ।।१८।।

रात भर दीपक जलाती, विरह के उपमान
कृष्ण लेते अर्घ्य, देते बाँसुरी का दान
मधुर, दूरागत, चिरतन, रागिनी के दूत
घेर लेते राधिका को, भाव मन अनुस्यूत ।।१९।।

बस यही क्रम चरण चिह्नो पर सदा अवदात
बढ़ रहा जीवन, तपो सा, था प्रफुल्लित गात
शुभ्र-वसना गूँथती जाती सुमन की माल
प्रीति मे डूबे हुए रतनार नयन-विशाल ।।२०।।

उर्मियो मे ज्यो बँधे हो, मोतियो के हार
कु तलो मे या पले हो, कुसुम-गध-विहार
तम-क्षितिज को पारकर,सब व्याधियो को भूल
भक्ति के किंजल्क का बनता गया उपकूल ॥२१॥

साँझ आती, प्रात मे आते श्रमिक हो क्लान्त
गूँजता था साधिका की प्रार्थना से प्रान्त
और पल भर मे सभी अपनी व्यथा को भूल
नृत्य, कीतन, राम करते, झूमते ज्यो फूल ॥२२॥

भक्ति की पगडडियो से पुष्ट होकर धीर
बन रहा था, ज्ञान गगा, राज-पथ गभीर
साँझ जाती, प्रीत या सगीत करता राम
प्रात होता, ज्योति किरणो का सरस उल्लास ॥२३॥

राव दूदा एक दिन बैठे हुए थे पास
और मीरा गा रही—'गोविन्द की है आस'
साधुओ की एक टोली भवन के सीमान्त
नाचने गाने लगी गुण, कृष्ण के कल-कान्त ॥२४॥

कौन आया है हमारे प्रीत के आवास?
क्या सभी ये हैं हमारे कृष्ण प्रभु के दास?
दौड कर बाबा गए, सब नृत्य मे तल्लीन
गा रहे थे झूमकर सब भक्ति-गीत प्रवीण ॥२५॥

कृष्ण का प्रतिमान क्या था, कृष्ण थे साकार
खिल उठे थे नैन, जिनका गगन घन-आकार
प्रीति की परतोती-भोली दृष्टि, मीरा मौन
मडली बोली बताओ—'भक्त मीरा कौन?' ॥२६॥

रायजी बोले— 'यही बेटी बनाती गीत
इसी ने बाबा लगाई है नयन मे प्रीत
सत्य, पगली है, बड़ी भोली, हृदय की साँच
कृष्ण की गुणगान-ध्वनि मे थम रही है आंच ॥२७॥

माधु सब नेतृत्व पाते, भक्त थे विश्वास
भक्ति ही जिनकी शिराओ की रही थी प्यास
दिव्य-आनन साधिका का देख, रोये सत
भक्ति औ' भगवान ही हैं सृष्टि-रूप अनत ।।२८।।

देवि ! देवि ! सुधा, तुम्हारा प्रीति गुण सवाद
गीत वह गोविन्द का कह दो करो कुछ याद
गीत हैं, नवनीत है या मधुर-रस के राग
श्रवण करते ही हृदय मे बोध उठता जाग ।।२९।।

गीत तो आते नही, बाबा ! मुझे, अज्ञान
खा रहा है प्राण को, यह मोह का व्यवधान
बन नही सकता हृदय का तार टूटा छद
कहाँ वे गोपाल प्रभु औ' मैं कहा मति मद ? ।।३०।।

पात्र निंदा की यहा नारी, सभी को ज्ञात
इसलिए उपहास करते, है सभी दिन रात
दीन-मन फिर भी लगाये है उसी की आश
बस मिटें उस नाम पर, मेरे अकिंचन साँस ।।३१।।

सुन रहे थे साधु सब उस योवना को घेर
लगे कहने कृष्ण ! कैसा हो रहा अन्धेर
साध्य तुम हो, भक्त फिर भी पा रहा दु ख नाथ
कर रहे प्रतिकूल, क्यो भोले हृदय के साथ ।।३२।।

नाचने गाने लगे, प्रभु के चरण को चूम
शात वह प्रतिमान हँसता, भक्ति-रस मे झूम
भक्त-नर्तन, यह प्रवतन, देखकर गोपाल
कर रहे थे ब्रह्म, माया का हृदय बेहाल ।।३३।।

मूर्ति को मचले प्रणयिनी के हृदय के भाव
कर उठी वह याचना, मन मे बहुत था चाव
चल पडे सब सन्त, कर आतिथ्य का जलपान
रो पडी मीरा न पाकर साध्य का प्रतिमान ।।३४।।

सन्त से तुलना नही, प्रह्लाद के महाराज
मैं अकिंचन दीन दासी, है नही सुख साज
रात भर रोई, न खाया अन्न का तक ग्रास
पूर्णिमा के चन्द्र को ज्यो घेरता ग्रहवास ॥३५॥

भक्ति के अवतार का तब, हिल उठा साम्राज्य
भक्त को आघात पहुँचा, प्रेम था अविभाज्य
स्वप्न् मे जाकर हिलाया साधु का विश्वास
हाथ ले प्रतिमान दौडे साधिका के पास ॥३६॥

मूर्ति लो है देवि ! प्रभु का है यही आदेश
स्वप्न् दे प्रभु ने मिटाया भ्रम नही है शेष
हम अकिंचन साधु, उनकी अर्चना मे भूल
कर गये, तो प्राण मे उठने लगे है शूल ॥३७॥

इस सुघड प्रतिमान पर मीरा तुम्हारा प्यार
भूल मेरी थी, तुम्हारी भक्ति का अधिकार
तुम्ही ने मुझको दिखाया, दिव्य दर्शन रूप
दे रहा अभिभूत होकर, भक्ति भूरि अनूप ॥३८॥

राजकुल मे यदि रहेगी तो सुरक्षा साथ
भक्ति यश फैरा तुम्हारा, विश्व मे दिन रात
पर तुम्हारे गीत, कीर्तन, भक्ति के आधीन
कह रहा हूँ सत्य है, गोविन्द भी तल्लीन ॥३९॥

हे प्रभो ! यह राजरानी भक्त बन साकार
विश्व का कल्याण करदे, शक्ति का अवतार
चाँदनी बिछ जाय इसके भक्ति पथ मे, गीत
गा उठे कण कण प्रणयिनी कृष्ण की यह प्रीत ॥४०॥

मूर्ति पाकर मग्न मीरां, हो गई उन्मत्त
कृष्ण के रँग मे रँगी, वह साधिका अनुरक्त
श्रवण, कीर्तन, पाद-सेवन, भक्ति का उत्साह
गीत गाती, नृत्य करती प्रीति पथ की चाह ॥४१॥

भाव ले दाम्पत्य, करती सुश्रूषा-आधार
और देती प्रीति से वह प्रणय की मनुहार
आलि ललिता तार से झंकार देती साथ
कल्पना में डूब करती थी पिया से बात ।।४२।।

रावजी ने सुनी उसके प्रणय की झंकार
वयस का अनुमान कर, चिंतित हुए हरबार
पुत्र वीरम को बुलाकर लिखी पाती एक,
दूत को चित्तौड भेजा, राजपूती-रेख ।।४३।।

दूत लौटा खुशी का सवाद शुभ ले साथ
हर्ष की पा सूचना, बोले प्रभो से बात
कृष्ण ! हे माधव ! तुम्हारी चेरि का यह पव
आन से पूरा निभाना, राजपूती-गव ।।४४।।

राज राणा, नाम था सग्राम सिंह समान
वीर रस के ज्योति-पु ज, उदार यश की खान
थे प्रबल प्रणवीर, गुण गम्भीर, नेत्र विशाल
प्रजा के पालक, महाशासक, जयी प्रतिपाल ।।४५।।

वीरता और शौय के अवतार, जय के रूप
वीर रस साकार ज्यों हो युद्ध-वीर अनूप
राजपूती आन से मडित रहा वह वीर
और कुल अभिजात्य, रूप उदात्त, गुण गम्भीर ।।४६।।

न्याय प्रिय चित्तौड औ' हिन्दुत्व का वह सूय
वैरियों का काल, बजता था विजय का तूय
कीर्ति का ध्रुव, सत्य का सेवी उदार अपार
युद्ध में अजु न सदृश या भीष्म का अवतार ।।४७।।

भूल सकता क्या कभी, सग्राम का इतिहास ?
आज भी चित्तौड को उसकी बनी है प्यास
नाम सांगा, कांपता सुन अरिदलो का जूथ
दूध था या माँ धरा का, शौर्य सिंह सपूत ।।४८।।

सूर्यवंशी रक्त था उनकी नसों का नूर,
प्राण जाये, पर वचन रक्षित रहे भरपूर
जो रखे दृढ धर्म को, रखता उसे करतार
शरण आगत को मिले बस अभय दान दुलार ।।४९।।

इला के रक्षक, कला के सूर्य से प्रतिपाल
धर्म के अभिधान या अभिमान के थे काल
और थे अन्याय पर यमराज कैसे क्रूर
संग जिनके शूरता जन्मी पली भरपूर ।।५०।।

शूर सांगा के कुंवर थे भोजराज उदार
पितृवत् थे वीर कमठ, कला-कीर्ति-कुमार
तय हुआ परिणय उन्हीं से, राजपूती आन
बात सुनकर मेडता को मिल गया सम्मान ।।५१।।

हर्ष का उद्वेग आया, रावजी के द्वार
लग गया प्रासाद में उल्लास का अम्बार
पर्व, उत्सव, गान, कीर्तन, मांगलिक उत्साह
नगर घर घर ने मनाये, स्नेह-भीनी चाह ।।५२।।

रावजी दौडे सुनाने साधिका को बात
हार लेकर नौलखा, ज्यों ज्योति का हो प्रात
बावरी मीरा विकल थी, नृत्य का उन्माद
छा गया था, भवन भर में पूर्णिमा का चांद ।।५३।।

और ललिता किन्नरी-सी वादिका बेहाल
छेडती थी तार, प्राणों में, प्रणय के जाल
सान्द्र स्वर का परस सम्मोहन लिए अनुराग
भर उठा प्रासाद में, गोविन्द प्रीति-सुहाग ।।५४।।

साधिका स्वर मग्न थी, ले गीत एक पुनीत
और तब गोपाल उसके बन गए थे मीत
रावजी प्राचीर का अवलम्ब लेकर मौन
हार रख तन्मय हुए, आनन्द देता कौन ? ।।५५।।

गा रही थी भक्त मीरा—'शरण हूँ गोपाल !
अब भुलाना मत कभी, गोविन्द! प्रण प्रतिपाल !'
रावजी के नेत्र उन्मीलित हुए हर वार
सहस स्रोतों से चली थी अश्रुजल की धार ।।५६।।

सामने गोपाल का स्मिति-रूप रेखा-जाल
बाधने उनको लगा, विस्मृति हुई उत्ताल
नयन के कोरक हुए, गोविन्द के आधीन
सांस ने सचार छोडा, कृष्ण मे तल्लीन ।।५७।।

सितार बजता ही रहा ललिता सभी सुधि भूल
चली विग्रह पर चढाने समपण के फूल
साधिका ने सामने देखा खडे थे तात
देह सज्ञाहीन, अर्पित था प्रणव के, गात ।।५८।।

हाय बाबा ! चीख मीरां की भवन मे व्याप्त
हो गई पचत्व को वह भक्त देही प्राप्त
साधिका के मेघ नयनो मे भरी बरसात
अहर्निश गिरते रहे करुणाश्रु तब अवदात ।।५९।।

दर्द घुल घुलकर सभी बनते गये आघात
रश्मियां सन्यास की, लाता गया हर प्रात
राव दूदा के मरण के शोक मे बेहाल
मेडता के वीर वीरम फिर हुए प्रतिपाल ।।६०।।

दु ख यदि बँट जाय तो, बढते सुखो के पु ज
लहलहाते शांति के सूखे हुए फिर कु ज
शोक कम हो, साधिका का सोचकर दिनमान
तय किया परिणय, बढा चित्तौड का सम्मान ।।६१।।

मेडता के द्वार अब शहनाइयो के गान
गूँजने सुनने लगे, प्रासाद के पाषाण
राजसी वैभव भरा धन धान्य से भरपूर
मेडता अब कर रहा आतिथ्य, ज्यो रण शूर ।।६२।।

गध की उस धूम-रेखा ने सुना प्रस्ताव
पीर से पीडित हुई, ले अश्रु-डबे भाव
क्या यही प्रियतम ! तुम्हारी प्रीति का आदेश ?
यह दुबारा कौन सा परिणय बचा है शेष ? ॥६३॥

म्लान मुख, सत्रस्त नयनो मे उदासी थाम
लगी यह कहने प्रभो ! क्या भक्ति का परिणाम ?
मन नही है पास, तन की निधि तुम्हारी प्रीत
कौन सा रूपक यहाँ अब हो रहा अभिनीत ? ॥६४॥

क्या यही तुमने बनाया सृष्टि सग विधान ?
एक नारी के रहे दो पति, प्रणय-प्रतिमान ?
हो चुका सब कुछ तुम्हारी चेरि का हे नाथ !
अब न होगा, मृत्यु तक परिणय किसी के साथ ॥६५॥

सात भाँवर पड चुकी, मेरी तुम्हारे साथ
कौन-से सौभाग्य की अब शेष है यह बात ?
धूम का जलना कभी सभव नही, प्रतिपाल
डालते हो क्यो बताओ मोह का यह जाल ? ॥६६॥

पर न रुक पाया पिया की कामना का ज्वार
और जग की रीति का रूपक हुआ त्योहार
राजकुल चित्तौड का, आया सजा बारात
भोज बन दूल्हा चढे, ले हृप डूबा गात ॥६७॥

मेडता मे सात दिन दीपावली की धूप
चाँदनी सगीत की, उत्सव हुए अनुरूप
पर न छोडा साधिका ने कृष्ण का प्रतिमान
मूर्तिवत् सहती गई, इस देह का अपमान ॥६८॥

अश्रुमुक्ता से सजाकर राव वीरम थाल
कर चुके पूरी सभी उत्साह से जयमाल
प्राण-प्रण-सत्कार देकर, वीर वीरम तात
स्वर बधावो के उठे, नयनो भरी बरसात ॥६९॥

साथ दे धन धान्य की, फिर अश्रु-भीनी प्रीत
कह सके बेटी ! निभाना राजकुल की रीत ।
और ले सागा चले, कुल की वधू, अनुराग
कट गए सब ताप उनके जगमगाया भाग ।।७०।।

साथ मे छाया-सदृश ललिता सखी ज्यो सास
भक्ति का वह तार जैसे हो हृदय के पास
मेडता हो पितृवत् बोला—'अचल अहिवात'
याद, सूरज गग, जमुना-सा रहे यह साथ ।।७१।।

आज बेटी जा रही है छोडकर यह प्रान्त
फूल से सौरभ उड, रह जाय पाटल शान्त
कण्व से दूदा नही थे, पर तपी था देश
जा रही दुहिता धरा की, भक्ति का सदेश ।।७२।।

लिया चरणामृत सुधामय फिर समर्पा सीस
मेडता के चतुभु ज भगवान की आशीष
कठ थे अवरुद्ध, वाणी बन गए थे नैन
भर गई छाती, मिले ममता सने कुछ सैन ।।७३।।

प्यार का मोती, पिता का छोडकर प्रासाद
चल पडा कीमत चुकाने धर्म, कम प्रमाद
आ रहा था जिन्दगी का स्वग-शशव याद
राज्य-लक्ष्मी को हुआ, प्रभु प्रीति का उन्माद ।।७४।।

रो रहा था नगर भर, जमे विदा के गीत
ज्यो बरसते फूल नभ से, यह विरह की रीत
साधिका तजकर किशोरी वयस का आवास
चल पडी सौरभ जगाने, दुग के रनिवास ।।७५।।

मेडता से पुण्य चलकर, आ गया चित्तौड
ज्यो प्रतीक्षा प्रीत मे हो, यह युगो की होड
मुक्त हिरनी घिर गई, रनिवास क्या था जाल
कुलवधू की लाज से निर्मित हुआ ससुराल ।।७६।।

दास, दासी, राज-वैभव रग-शृ ग विशाल
धन धरा का, रूप अम्बर का, सजाकर थाल
आज फिर चित्तौड ने, कर ज्योति का शृ गार
प्रात स्वागत गान गाये, हृष पारावार ।।७७।।

दुर्ग का कण कण हुआ ज्योतित, जगा रनिवास
क्योकि अब वीरत्व के सँग भक्ति का उल्लास
भव्य भवनो मे जड़े मणि रत्न रग-निधान
तूलिका जीवन्त लेकर कला का सधान ।।७८।।

गगनचुम्बी मदिरो के स्वण-कलश-विहान
द्वार तोरण पर सजे थे, भक्ति के आधान
राजपूतो आन, शासन मे बँधे सब लोग
और थे चित्तौड मे, स्वर्णिम सभी सुख भोग ।।७९।।

राज-वैभव मे घिरे, अब साधिका के गीत
स्वर्ण पिंजर ज्यो चिरैया, राजकुल की रीत
है सुखो औ' साधना मे युगयुगो से वैर
ज्योति के हर क्षितिज मे, तम का बसा अन्धेर ।।८०।।

कष्ट की गहराइयो मे सुख भरे आभास
प्यास की परछाइयो मे तृप्ति का आवास
पक मे ही जन्म लेता है सदा जलजात
कृष्ण-मेघो से सँवरती तडित की बारात ।।८१।।

प्रीति का हर सांस पाता है बहुत आघात
हर तपे दिन का विलय विश्राति भीनी रात
अग्नि की हर दिव्यता, कुन्दन बनाती रूप
हार के तम के पटल, जीवित, विजयिनी धूप ।।८२।।

मुस्कुराता प्रलय मे भी जिन्दगी का साज
मृत्यु का पतझर बना, निर्माण का ऋतुराज
सुधा की अनुगामिनी है, हर गरल की प्यास
सुखो का कटक-शयन, बनता वही सन्यास ।।८३।।

साधिका को यो सभी कुछ प्राप्त थे सुख साज
पर लदी थी भक्ति पर, रनिवास कुल की लाज
इसलिए हर गीत उसका, रूप-रग उदास
आ न पाता राजकुल के भक्त कोई पास ॥८४॥

यो कुँवरजी ने उसे, सौपे सभी गृह-काज
स्वामिनी का ज्यो सभी पर एकछत्र सुराज
पर पडी थी भक्ति पर, रजवट कुलो की लाग
प्राण प्रिय के विरह मे, जलती हृदय की आग ॥८५॥

रावजी के साथ उसकी देह का सम्बन्ध
घुल न पाया प्राण मे, बनता गया था द्वन्द
और ललिता मौन थी, इगित प्रभो का मान
स्वामिनी का सुख सभी, अब हुआ अन्तर्धान ॥८६॥

भोज ने बनवा दिया, प्रासाद के ही पास
एक देवल कृष्ण का, जिससे मिले उल्लास
कुँवर जी का भी हटा मन, सुख हुआ वैराग्य
दिख गया उनको बदलता नियति-निर्मित भाग्य ॥८७॥

राजगृह मे अब हुआ अविवेक पूण विवाद
हो गया उसका सभी व्यवहार एक विषाद
कुल-वधू कुल बोर देगी, नृत्य केवल चाह
राज-महिषी के हृदय मे, हुआ अन्तर्दाह ॥८८॥

जग-हँसाई कर रही है, बावरी यह बाम
साधु-पूजा, नृत्य-कीतन, डूबता है नाम
और अब महाराज तक, पहुँचा यही सवाद
कुल-वधू को हो गया है, भक्ति का उन्माद ॥८९॥

जानते थे भोज, मीरा दूज-विधु सी पूत
भक्ति, प्रभु की भक्ति, उसके प्राण से अनुस्यूत
साधु-सेवा, प्रीति-पूजन, नृत्य, कीतन, गान
सब यही स्वीकार था, प्रभु का हठी सम्मान ॥९०॥

नाचती, गाती, पिया का सामने प्रतिमान
साथ ललिता तार से, करती मधुर स्वर-गान
कुँवर भी होकर प्रभावित बैठ जाते पास
भक्ति के ससार के, अब हो गये थे दास ॥९१॥

राजगृह की रानियो मे अब हुआ विद्रोह
जागता उनमे सदा था रूप का व्यामोह
ननद ऊदा और ललिता, बस रही दो साथ
सान्त्वना दे साधिका को, सदा करती बात ॥९२॥

म्लान होते गए तन के सुख सभी शृगार
व्यग्य बाणो से बिधा, मन और जीवन भार
कुँवर जी अब व्याधियो से हो गये आक्रान्त
काटने उनको लगा, अपना चतुर्दिक प्रान्त ॥९३॥

दूसरा परिणय करो सब ने सुझायी बात
पर न सज पाई कभी, फिर भोज की बारात
पीर उनकी साधिका को, अब हुई अनुभूत
भर उठी मन मे व्यथा बोली वचन यो पूत ॥९४॥

आर्य ! यह कैसी मनस्थिति हो रहा सताप ?
मौन होकर देह-सुध, भूले हुए है आप
हो गया अपराध मुझमे मैं दुखो की मूल
स्वर्ण-काया, रुग्ण-छाया हो गई प्रतिकूल ॥९५॥

कुँवर बोले—'देवि ! तुम हो साधिका निष्णात
ज्योति के सँग कीट का, जीना बडा व्याघात
देह के गुण-धर्म है सब, पाप-पुण्य-विधान
भोग काया के सभी तो, है यहा म्रियमाण ॥९६॥

तुम बताओ साधना निर्द्वन्द्व तो अवदात ?
चल रही कैसी तुम्हारी है सतत आघात
अश्रु का सैलाब भरकर, दर्द के दो बोल
कह न पाई, मूर्तिवत्, मीरा हृदय को खोल ॥९७॥

यही है आदेश प्रभु का, कुछ नही अब शेष
आ रहा वृंदा विपिन से कृष्ण का संदेश
श्री सभी गोपाल की, मेरे लिए है त्याज्य
सूर्यकुल या चन्द्रकुल मेरे लिए अविभाज्य ।।९८।।

भेज दो वृंदा-विपिन हे आर्य ! मुझको आज
भक्ति पथ पर चल पडी, यह राजकुल की लाज
वीर सांगा से कुंवर को मिल गया आदेश
हो गयी तन्मय, पिया की प्राप्ति का उन्मेष ।।९९।।

मच गई वृंदा-विपिन मे साधिका की धूम
'मेरे तो गिरधर गोपाल' गीत गूंजा झूम
भक्त गण के कंठ से जय जय निनादित नाम
साधिका मीरा अमर हो ! कृष्ण ! माधव ! श्याम ! ।।१००।।

साधिका की देह पर, अब वस्त्र थे काषाय
भक्ति का व्यक्तित्व तन पर, लद गया बन दाय
हर अधर पर गूंजता था, प्रणयिनी का गीत
भक्त-गण उन्मत्त थे, पाकर प्रभो की प्रीत ।।१०१।।

तृषित तन को मिल गया, ज्यो सरस प्रीतालम्ब
पान करते साधु उसके, गीत का कादम्ब
वीथिया वृंदा-विपिन की, पथ बिछाती फूल
चरण पाकर हो गयी थी, धन्य उनकी धूल ।।१०२।।

कुंवर तब आये बुलाने कहा—'राज्यादेश
अब चलो चित्तौड'—सुनकर हुआ धूमिल वेश
भक्ति पथ-पीयूष से, जो मुस्कराई बेल
सूख कुछ क्षण मे गई, कैसा नियति का खेल ? ।।१०३।।

साथ लेकर चल पडे, वृंदा-विपिन सुनसान
ज्यो पलायन कर चले, इस देह से ये प्राण
चल पडे साधू अनेको साधिका के साथ
ज्यो चढी हो आज, देखो भक्ति की बारात ।।१०४।।

विष-पान

लौट ग्राई साधिका चित्तौड, मन मे क्लान्त
भर उठा था व्यग्य वर्षा से भवन का प्रान्त
जो मिला गोविन्द को, अर्पित किया तत्काल
भक्ति का पथ ज्ञान से भी हो गया विकराल ॥१॥

राज महिषी क्रुद्ध हो बोली—'लुटा दी लाज
सूर्यकुल को लग गया यह कुटिल तेरे काज
मिट सकेगा क्या कभी यह, दाग कुल का राम !
मिल सकेगा क्या पुन वीरत्व गौरव नाम ? ॥२॥

सब जगत हँसने लगा ह, कुल-वधू पर ग्राज
ग्रौर मीरा ने लुटादी कृष्ण पर सब लाज
हो गई थी ग्रब उदासी, कुँवरजी के साथ
भक्ति मे लगने लगा मन, हो सघन, दिन रात ॥३॥

राज वैभव काटने उनको लगा ज्यो शूल
शब्द जैसे दश हो, लगने लगे प्रतिकूल
सब सुखो का शयन, काँटो सा बना था ग्राज
ग्लानि भर मन मे उन्होने, तज दिये सब काज ॥४॥

राजमाता ने कहा—'छोडो इसे हे वीर !
रूप है पूरा कुलच्छन, बेहया, बेपीर
नाचना, गाना सदा, ग्रौ' साधुग्रो के बीच
मुस्कुरा कर बात करती है, सदा यह नीच ॥५॥

तीथ है ग्रसिधार, गौरव ग्रग्नि-कुण्ड प्रवेश
राजपूती ग्रान का, इसमे नही लवलेश
भोज का तन बिंध गया था, शब्द शर-सघात
राज-रोगी हो गए घुनने लगे दिन रात ॥६॥

गिर पडे दु ख के अनेको नग विशालाकार
लीलते जाते धरा को, कष्ट-पारावार
शाप पी जाये हजारो, कोटि हो आघात
शब्द-शर की तीव्रता सब से भयकर बात ॥७॥

रूप सब घुलता गया, तन मे लगा था रोग
लवण सा गलने लगा तन का सभी सुख भोग
वे न बोले प्रणयिनी से, कटु कभी भी बोल
जानते थे भक्ति उसका, रत्न है अनमोल ॥८॥

एक दिन सबने सुना, लो हो गया सब शेष
कुँवरजी की दिव्य-देही काल-कवलित वेश
ज्योति का अणु चल पडा था अग्नि पथ अज्ञात
मृत्तिका शाश्वत पडी थी, मृत्तिका के साथ ॥९॥

बुझ चुका था दीप, केवल छोडकर अब दाह
साधिका के आँसुओ को मिल न पाई राह
शोक के आवेग का अम्बार भीमाकार
छा गया चित्तौड पर, वह विषम हाहाकार ॥१०॥

राजरानी ने दिए गिन गिन अनेको शाप
खा गया कुल को वधू के पाप का सताप
फूँक डालो कर सती, इसको कुँवर के साथ
अत हो जाये सभी, कुलटा बहू की बात ॥११॥

सती होने की सुनी, जब राजकुल की रीत
गिर पडी ऊदा धरा पर, थी नयन मे प्रीत
बताओ भाभी! बताओ यह कहा का न्याय ?
राजमाता ने किया, कैसा विचित्र उपाय ॥१२॥

बिना मन के सती होना, पाप होता पाप
दौड कर महाराज के, चरणो पडी वह आप
हाय दाता! आपके साम्राज्य मे अन्याय
राजमाता ने किया है, नैश-नाश उपाय ॥१३॥

हे पिता ! रक्षा करो, अन्याय का यह जाल
पत रखो दाता ! सुना यह नति-प्रणति तत्काल
शोक डूबे महाराणा, अश्रु का उद्वेग
चढ़ाकर त्यौरी उठाई, हाथ में फिर तेग ।।१४।।

सिंह से गरजे महाराजा, नयन थे लाल
ज्वाल सी काया जली, वाणी हुई विकराल
तुम वधू ! शृंगार करके, क्या चलीं हो आज ?
जा रही होने सती दाता ! हमारी लाज ।।१५।।

शब्द ऊदा ये सुने, फिर रक्त खौला और
अग्नि में ज्यों घी पड़े, कसा उठा था जोर
राजमाता काँप कर, भागी महल की ओर
सूप के आघात से ज्यों, कट तम की डोर ।।१६।।

उठो बेटी ! महाराणा का हुआ आदेश
भाव बिन यों सती होना पाप का परिवेश
सखी ललिता और मीरा, अश्रुमय था गात
चल पड़ी प्रासाद में, ज्यों बरस कर बरसात ।।१७।।

राजमाता हो गई थी, क्रुद्ध होकर शान्त
ज्यों भभक कर बुझ चले,लो, मन रहा आक्रान्त
फिर उठे महराज घन, ले युद्ध का आदेश
सीकरी साँगा चले, हो वीर-रस-उन्मेष ।।१८।।

वीर बाबर, सिंह साँगा, दहकता संग्राम
रौद्र हो जूझे सभी, प्रणवीर प्रण के नाम
पर न मिल पाई विजय, राणा हुए फिर शेष
छा गया मेवाड़ पर दुख-द्वन्द्व भारी क्लेश ।।१९।।

बुझ गयी हिन्दुत्व की वह दीप्त-ज्योति महान्
कुँवर विक्रम को मिला पद, परंपरित विधान
इस तरह प्रासाद में अवसाद की वह आग
भड़कती जाती सुलगती, त्रस्त था अनुराग ।।२०।।

सभी ग्रह कोपे, पलायित, हो गया कल्याण
राजमाता के हुए प्रतिशोध पूरित प्राण
वीर विक्रम को बुलाकर, सब बताई बात
लग गई चिन्ता उन्हे, मन पर पड़े आघात ॥२१॥

कह रहे है आज भी जनसाक्ष्य के उल्लेख
साधिका पर हुए अत्याचार और अनेक
विजयवर्गी एक बनिया, क्रूरता का रूप
कुटिलता वश हुए उसके, शीघ्र विक्रम भूप ॥२२॥

व्याज पय का, पर गरल से भरा प्याला एक
भृत्य लेकर चला देने, साधिका की टेक
प्रणयिनी तन्मय, प्रभो के गीत का सन्धान
भोग दे गोवि द को, झट कर गई विषपान ॥२३॥

हलाहल, अमृत हुआ, प्रभु ने लिया था भोग
साधिका के मिट गए, सब व्याधि-पूरित रोग
शैव-धर्मी वश था, चित्तौड का परिवार
शिव अमर कल्याण के स्वामी सदा अविकार ॥२४॥

विष पचाया प्रीति औ', आशीष के वरदान
साधिका पर प्रीत थे, शिव ताण्डवी भगवान
नीलकंठी हो गई थी, प्रणयिनी की भक्ति
भक्ति विषपायी हुई, द्विगुणित पिया अनुरक्ति ॥२५॥

विष अनेको है, जिन्ह कहते यहाँ दुष्कर्म
मानते है सब उन्हे, बस मोह, आपद्धर्म
जिन्दगी को शेष करने मे सभी सलग्न
काष्ट-घुन ज्यो खा रहे तन, पर सभी हैं मग्न ॥२६॥

विष बुझे है पात्र सारे, दर्प के रग भीन
रूप सम्मोहन सुधा, सब पी रहे तल्लीन
हो गया कादम्ब भी, अब नीर जैसा पेय
सभ्यता मे घुल गया है, किन्तु कितना हेय ॥२७॥

प्रणयिनी ने पी लिया था, हलाहल साकार
राजमाता वीर विक्रम से मिला उपहार
पी लिया उसको प्रभा ने, भक्त से ले भोग
पा गई वह साध्य से, वरदान एक अमोघ ॥२८॥

मार सकता कौन, हो जिस पर प्रभो का प्यार
नाश से निर्माण को मिलता अधिक अधिकार
साधिका को भक्ति का बल था अनन्त अपार
मुस्करा कर पी गई, उस गरल को सुकुमार ॥२९॥

पास ललिता दु खी होकर थी खडी चुपचाप
मानकर विष-पान को, दुर्दान्त भारी शाप
प्रणयिनी के चरण कमलों पर गिरी सुधि भूल
हो गये ये साँस भी, अब जिन्दगी को शूल ॥३०॥

सो गई दोनो वही उस वेदि पर सिर टेक,
भक्ति ही थी पास मे, बस एक ज्योतित-रेख
देखकर जीवित उसे, विक्रम हुए हैरान
गरल पीकर सो गई यो, ज्यो किया मधुपान ॥३१॥

विफल होता देखकर यह कूट विष का मत्र
राजमाता ने सुझाया, दूसरा षडयत्र
रात बीती, भोर गूँजा, प्रार्थना का राग
राजमाता मे जगी प्रतिशोध की फिर आग ॥३२॥

एक डलिया मे सजाकर पुष्प अनगिन रग
विप्र पहुँचा लिए पुष्पो मे विषाक्त भुजग
कहा ब्राह्मण ने—'पठाये हैं तुम्हे ये फूल
चढा अपने हाथ से, विधि को करो अनुकूल' ॥३३॥

प्रीति से मीरा बढी, लेकर प्रभो की ओर
हो गए आवेश मे गीले नयन के कोर
दीखता है देवि ! मुझको छद्म इसमे जान
तुम न छूना टोकरी मे, हो भयानक व्याल ॥३४॥

भक्ति के उद्वेग मे, मीरा उठी तत्काल
और बोली—'अब मुझे क्या काल है क्या व्याल
देह है गोविंद की अर्पित उन्हे यह धूल
मृत्तिका नश्वर सखी ! अभिमान करना भूल' ॥३५॥

तब उठी फुफकार डलिया से भयानक एक
काल-अहि विकराल निकला, रखी प्रभु ने टेक
टोकरी मे हाथ थे और हाथ मे प्रतिमान
कृष्ण का विग्रह अद्भुत, अनुपम स्वयं उपमान ॥३६॥

द्वार पर थे वीर विक्रम, खग लेकर हाथ
हो गया विश्वास, इसके सिद्धि कोई साथ
इसलिए प्रतिशोध ने ली और करवट एक
दान देती गई जीवन भक्ति, लक्ष्मण-रेख ॥३७॥

प्रीति-मग्ना सदा करती थी, प्रभो से बात
बन गई यह भाव-लीला, फिर नया आघात
सेविका ने वीर विक्रम से कही यह बात
रात्रि-शय्या मे न जाने कौन रहता साथ ॥३८॥

लाख खोजा पर न पाया, पुरुष का इतिहास
कर न पाये वीर विक्रम, बात पर विश्वास
कलुष हो जिनके हृदय मे, पुण्य उसे दूर
तामसी थी वृत्तियाँ, विभ्रम बने थे शूर ॥३९॥

एक दिन हो क्रुद्ध उसने, कुछ बुलाये दूत
औ' कहा—'तुम राजकुल के मित्र वीर सपूत
बाध दोनो को, डुबादो पास मे है ताल
लाज कुल की बोरदी, नारी बडी विकराल ॥४०॥

स्वप्न मे प्रभु से प्रणयिनी कर रही थी बात
कृष्ण का सम्बल, पुलक डूबा हुआ था गात
क्रूर दोना कक्ष मे कूदे, चले चुपचाप
लग गया था अब उन्हे भी, काल का अभिशाप ॥४१॥

अर्द्ध निशि मे बाँध कर मुँह, चल पडे थे ताल
नैश तम मे फेंक कर, दोनो हुए खुशहाल
पौ फटी, उठकर चले, विक्रम अजिर की ओर
पर भवन के कृष्ण मन्दिर मे उठा अन्दोर ।।४२।।

वृद्ध तापस मुस्करा कर, दे रहे वरदान
और दोनो प्रिय-प्रणति मे, लीन थी अम्लान
आ रही थी थाल पूजा का लिए अभिराम
शक्ति मीरा और ललिता, कृष्ण का ले नाम ।।४३।।

हो गए हतदर्प विक्रम, सभी पौरुष भूल
चतुर्दिक उनको लगे चुभने, शरो से शूल
भूल थी पर दभ का, मन पर रहा अधिकार
मति हुई कुठित, पतित होती गई मनुहार ।।४४।।

नित्य ही उनको लगा, कोई तपी साकार
साधिका को बाटता, आशीष का अम्बार
प्राण मे बढता गया, अभिशप्त हो आक्रोश
हो रहे थे नित्य नूतन, प्रणयिनी के दोष ।।४५।।

नित्य मीरा प्रार्थना के गुनगुनाती बोल
प्राण प्रण से कर समर्पण, मुक्त अन्तस् खोल
चरण बढते जा रहे थे मुक्ति-पथ की ओर
साध्य का सम्बल तपस्या, थी अजस्र कठोर ।।४६।।

कृष्ण ! यह कैसा तुम्हारी भक्ति का सदेश
क्रूर कुठा, यातना कितनी बची है शेष
धैर्य देती थी सखी, ललिता उसे हर बार
शेष केवल साथ था गोविन्द का आधार ।।४७।।

हो गए श्री-हीन विक्रम, भक्ति का था शाप
हृदय उनके हो गए सताप भीने पाप
आज भी मेवाड को, है याद अत्याचार
वीर विक्रम ने किए जो साधिका के द्वार ।।४८।।

कृष्ण मेघो मे भरा है तडित का उल्लास
आँच मे ज्यो आग है, जीवन्त तन मे साँस
पुष्प मे सौरभ, तरगो मे अपार-प्रवाह
चरैवेति बनी हुई शैवालिनी को राह ॥४९॥

गीत मे ज्यो शब्द, स्वर, जीवन्त उसका रूप
छाँह का बधन लिए, है चिलचिलाती धूप
मृत्यु मे अमरत्व का है, पुण्य लीला-लास
मौन को अनुरक्त करता एक उज्ज्वल हास ॥५०॥

प्राण के सिर पर हुआ है, प्रीति का अभिषेक
तमस के इतिहास मे है ज्योति के उल्लेख
ह्रास ने उत्थान का, निर्मित किया आलोक
सुन प्रभाती, रात्रि अपना त्यागती निर्मोक ॥५१॥

नाश मे निर्माण का है, एक अक्षर-हास
प्यास मे डूबा हुआ है, प्रीति का उल्लास
गरल ने पीयूष को, गौरव दिया सम्मान
विरह ने कु दन किया, तब, राग को पहिचान ॥५२॥

प्रस्तरा को ग्रहण करता, फैक कर मणि-माल
त्याग रत्नो को उठाता, सीपियो का जाल
भस्म को तन पर लगाता, छोड मलयज गध
नाम को बदनाम करता, वह सदा मतिमद ॥५३॥

राजमाता प्रेरणा, विक्रम हुए थे तत्र
और अत्याचार के ओछे गए सब मत्र
पर न हो पाया सफल, षडयत्र का ससार
साधिका करती गई, स्वागत बना गलहार ॥५४॥

ये सभी दुष्कृत्य, पहुँची मेडता तक बात
दूत आया एक, लेने साधिका को साथ
पर न भेजा वीर विक्रम ने, समक्ष अपमान
राजरानी के घटे, सब पुण्य के दिनमान ॥५५॥

मौन था चित्तौड गिन-गिन कर सभी दुःख क्लेश
लिख रहा गाथा सभी, आक्रान्त के सदेश
और ललिता ने कहा—'जीना यहाँ दुश्वार
स्वामिनी ! अब चल पडें, आराध्य के ससार' ॥५६॥

प्रणयिनी ने सुनी अतस की यही आवाज
झनझना कर बज उठे थे, भक्ति रति के साज
भाव डूबो, सामने बाबा खडे रदास
लगे कहने—'यही अत्याचार का इतिहास' ॥५७॥

चल पडो बेटी ! विपिन-वृंदा प्रभो की चाह
त्याग कर प्रासाद लो, वराग्य-भीनी राह
कह दिया मैने तुम्हे, प्रभु का यही सदेश
चल पडी मीरा, पिया का त्याग वीर प्रदेश ॥५८॥

छोडकर मेवाड पहुँची, वह पिता के द्वार
मेडता को मिल गया, फिर शक्ति का उपहार
मरुधरा के राव सँग सहसा ठना था युद्ध,
त्याग कर ससार, मीरा चल पडी, ज्यो बुद्ध ॥५९॥

लग रहा ससार उसको व्याधियो का मूल
नित्य वह प्रभु पर चढाती, वदना के फूल
पाच वर्षों बाद होकर विवश औ' निरुपाय
चल पडी वह मेडता से, भक्ति का ले दाय ॥६०॥

अब अलकृत था हृदय, पाकर अमर-स यास
प्यास औ' प्रिय के विरह मे रँग गये विश्वास
भावना मे मुस्कराता कृष्ण का प्रतिमान
चेतना अनुराग के, रचती कई मधु गान ॥६१॥

वस्त्र थे भगवाय, ललिता साथ गाती गीत
'चलो मन गगा जमुन के तीर पर है प्रीत'
भक्ति-तन्मय प्राण लेकर, साधुओ के साथ
चल पडी वृन्दा-विपिन, यह भक्ति की बारात ॥६२॥

फूल से सौरभ उड़ा, अब शेष छूँछी गंध
प्राण तज ज्यों देह बनती, मृतिका का बंध
मौन केवल शेष था, सब हास अन्तर्धान
पुण्य रूठे, पाप का नर्तन हुआ सम्मान ।।६३।।

दर्प प्रेरित-उर्मियाँ अब फेंक कर मणि-माल
हो गईं श्री हीन ज्यों, जय का बचे कंकाल
राजपथ का चाँद था, अब राहु का खग्रास
हो गया चित्तौड़ में, गृह-युद्ध का अधिवास ।।६४।।

रौन कर वह पुण्य वेला, हो गई सब म्लान
उत्सवों के बाद ज्यों, संगीत की स्वर-तान
टिमटिमाता दीप थी, अब राजवंशी शान
चल पड़ी गृह-दाह की आँधी दुरन्त महान ।।६५।।

और वृन्दा के विपिन में पर्व का उल्लास
भक्ति की मन्दाकिनी का, ज्योति भीना हास
गीत मीरा के हुए, हर अधर के शृङ्गार
लोक मानस में रमे, हर कंठ के गलहार ।।६६।।

हो गया श्री-हीन अब चित्तौड़ का रनिवास
राजमाता रुग्ण होकर, ले रही निश्वास
ग्लानि पारावार डूबे, वीर विक्रमराज
काँपकर हिलने लगा, चित्तौड़ का वह ताज ।।६७।।

भक्त के अपमान से उनको हुए सब क्लेश
राजमाता को मिला कृतान्त का संदेश
साधु सेवा, भक्ति के पथ, पर लगी थी रोक
कष्ट की फिर लहर व्यापी, दुग भर में शोक ।।६८।।

ध्वंस की झंझा बढ़ी, विक्रम हुए बदनाम
छोड़ अब बैठे, सुरा वश, राज्य के सब काम
आधि-व्याधि प्रकोप फैले, राज्य भर में नाश
स्वार्थ मय दरबारियों की, छद्म पूरित पाश ।।६९।।

भक्ति के अभिशाप से होता गया यह ह्रास
बढ गया दुर्दान्त, हाहाकार का उपहास
उधर वृन्दा मे खिला था, प्रीति का मधु-मास
प्रणयिनी के गान मे जीवन्त था सन्यास ।।७०।।

कथावाचक ने कहा—'बस आज का विश्राम
यही है, आगे पिया की भक्ति है उद्दाम
फफक कर रोया पथिक, सुनकर सभी आघात
वृद्ध वाचक ने धरा, सिर प्राथना का हाथ ।।७१।।



अक्षर-सुहाग

प्रणयिनी को प्राप्त कर, वृन्दा-विपिन परिवेश
भक्ति-भीना हो गया, महमह समस्त प्रदेश
साधना की मधुमती धारा बही उत्ताल
गीत गुंजन से हुआ, वह अजिर मालामाल ।।१।।

नित्य होने लगे उत्कट, प्रीति-पूजा-रास
भक्त-गण प्रमुदित हुए, पा ज्योति का आभास
भूल सुधि तन की सभी, रस पान करते शान्त
साधिका के गीत से मुखरित हुआ वह प्रान्त ।।२।।

लिए मीरा प्रीति का नवल उजागर साथ
हो रही क्षण-क्षण वहाँ अनुराग की बरसात
ढल रहे थे आशु-वाणी मे, प्रणय के गीत
चादनी के फूल ज्यो, प्रिय को समर्पित प्रीति ।।३।।

हाथ इकतारा लिए गूँजे मधुर मजीर
मुग्ध मदाकिनी हुई, लालित्य पूरित नीर
भक्त सब उन्मत्त थे, सुधि भूलकर दिन रात
मिल गई वृषभानुजा ब्रज, ज्यो उषा जलजात ।।४।।

अष्ट-प्रहरी साधना, प्रभु की निरतर चाह
भक्ति-पूजन, पाद सेवन राग, कीर्तन राह
कष्ट, अत्याचार से, पीडित रही जो देह,
भाव-बोधों से वही, पावन हुई पा नेह ।।५।।

धन्य है वह प्रान्त, मीरा-सी जहा हो भक्त
धन्य है वह भक्ति-गगा, साधना-अनुरक्त
धन्य है वह देश, जिस पर हो प्रभो अति प्रीत
धन्य है वह देश, जिसमे ध्वनित पूजा-गीत ।।६।।

धन्य वे सब भक्त-गण, विश्वास जिनके पास
नाम अर्चन, प्रीति-कीर्तन का लिए उल्लास
आज अन्तर्धान है, सब भक्ति का विश्वास
सुख लुटा विज्ञान करता, भक्ति का उपहास ।।७।।

अहं से हैं यन्त्रचालित, जिन्दगी के काम
दर्प से उदभ्रान्त हैं, सबके सुबह औ' शाम
मन्दिरों में बढ रहे हैं, छद्म, हास-विलास
अब कहाँ विश्वास-तन्मय, भाव भीने रास ? ।।८।।

आस्थाएँ गलित होकर, रो रही चुपचाप
मोह, सम्मोहन-दलित, सब क्रिया, काय-कलाप
और अब भगवान् भी, प्रतिवाद एक प्रतीक
धर्म के टूटे चरण की, शेष केवल लीक ।।९।।

सत्य कोसों दूर है, जीवन्त गय अलीक
रूप में सब मांगते हैं, प्यास-पूरित-भीख
सो गया चेतन हमारा, इन्द्रियों की प्यास
जागती हर क्षण, इसी से समय करता नाश ।।१०।।

कहाँ है बसा प्रणय औ' भक्ति का वह ज्वार ?
कहाँ है सत्य, शिव औ' नेह का अधिकार ?
हो गया है प्यार अब, कुंठा भरा उल्लास
कामना की तीव्र झंझा का विमुक्त विलास ।।११।।

अब नहीं मीरा बची, उस प्रीति का आधार
इन्द्रियों की प्यास ही है, प्रेम का अभिसार
छद्म, छल के साथ उठता, कामना का ज्वार
आज का यह प्यार है, पाश्चात्य का उपहार ।।१२।।

एक प्रियतम से कदाचित् हो गया मतभेद
दूसरा प्रस्तुत हुआ, ज्यों रक्त हो प्रस्वेद
पुष्प कृत्रिम टाँकती हैं, प्रियतमाएँ आज
शोध उनकी कोष में है, रूप के अन्दाज ।।१३।।

आज का यह प्यार है उस साधना से हीन
शीघ्र होता, शीघ्र रोता, दीन, क्षीण, मलीन
हो रहा विक्रय चतुर्दिक, राज्यक्ष्मी रूप
वासना तन का समर्पण, मुक्त-मन्त्र अनूप ।।१४।।

नग्न होता जा रहा है नारियों का वेश
झाँकते परिधान से, अभिचार के अवशेष
इंगिता पर चल रहा, कादम्ब ही है प्यार
रूप की तह में पड़ा मूर्छित सभी शृंगार ।।१५।।

वासना का जाल, कैसा प्रेम का आदर्श
प्रीति में अर्पण बिना क्या प्रेम का उत्कर्ष ?
आज के विज्ञान युग का शुद्ध अभिनय प्रेम
नाम मौलिक, काम नूतन, प्रेम गर्वित-क्षेम ।।१६।।

प्रणयिनी का प्रेम क्या था, आस्था साकार
उदधि ज्यों उत्ताल, मेघों की सरस जलधार
और वह भागीरथी सा पुण्य पावन प्रेम
प्राण अर्पण, साधना थी जिन्दगी का नेम ।।१७।।

रँग गया वृन्दा-विपिन, अब प्रणयिनी के रंग
यम, नियम औ' ध्यान धारण, हो गए पिय संग
कभी रूठी, कभी हारी सी, सुनाती गीत
कभी आँसू से रही सिंगारती संगीत ।।१८।।

कभी कहती—'सुनो ललिता पिय मिलन के काज
तुम सखी ! मुझको सजा दो, जा रही हूँ आज
तीव्र भावावेश में डूबा हुआ था गात
झिलमिलाता दीप-मन, ज्यों विधु सुधा में स्नात ।।१९।।

कृष्णमय मति, कृष्ण ही पति, कृष्ण ही कल्याण
कृष्ण ही थे प्राण, सुख की साँस, तन के त्राण
घुल गया था माधव मन में, सलिल रंग समान
रँग गया था प्रीति में तन, पुलक मधुमय दान ।।२०।।

भक्त-चातक, स्वाति-आशा, प्रीति का विश्वास
तन-पपीहा बोल 'पिय पिय' मे मिलन उल्लास
मन-भ्रमर नित खोजता था, दिव्य-सौरभ गान
विरह सागर मग्न था, वह प्रेम का सधान ॥२१॥

वर्तिका सी देह, तिलतिल जल रही दिन रात
प्रीति प्रभु की, भक्ति नेत्रो की सजल बरसात
गान मुखरित प्रेम के, मन मे मधुर-अनुराग
प्राप्ति केवल कामना भर, विप्रलभी आग ॥२२॥

प्रेम जीवन वाटिका का, शुभ्र सुन्दर फूल
प्रेम है जीवन विटप का एक रसमय मूल
प्रेम है परिपूर्ण प्रभु का, एक पूजा-गीत
प्रेम है आदर्श जीवन का, मधुर सगीत ॥२३॥

प्रेम है सन्यस्त जीवन का अकेला धर्म,
प्रेम है सत्रस्त प्राणो के उदय का मर्म
प्रेम है अकुर, जगाता देह मे विश्वास
प्रेम है, परिपूर्ण है सब, आन, प्रण के साँस ॥२४॥

प्रेम मे इस सृष्टि के निर्माण का इतिहास
प्रेम मे है सत्य, शिव की, ज्योति के अधिवास
प्रेम मे है कर्म का, सदेश-पूरित-राग
प्रेम मे है दिव्य जीवन के, विरह की आग ॥२५॥

प्रेम ने धोये, कलुष और दर्प के सोपान
प्रेम ने जीवन्तता का, दिया सब को दान
प्रेम ने मगल मयी बाँटी सभी को शक्ति
प्रेम ने दी रूप को, उज्ज्वल, अमित-अनुरक्ति ॥२६॥

प्रेम से तो डगमगाते नग विशालाकार
प्रेम मे मुखरित यहाँ, जीवन-मयी-मनुहार
प्रेम मे आलोक मिलता, दिव्य होती दृष्टि
प्रेम मे जीवन्त होती, यह शरीरी यष्टि ॥२७॥

प्रेम है तो, सांस मे आशा अटल विश्वास
प्रेम है तो, मुस्कुराते जिन्दगी के हास
प्रेम है तो, प्राप्ति का सदेश उसके साथ
प्रेम है तो, मृत्यु का बढता न कोई हाथ ॥२८॥

प्रेम मे होता, प्रणव का मूर्त अक्षर-गान
प्रेम मे होता, प्रभो का सृजन कर्म-विधान
प्रेम मे होता, पथिक की मजिलो का हास
प्रेम मे होता, मिलन की कान्ति का अधिवास ॥२९॥

प्रेम भावन भाव्य का है, साध्य की मुस्कान
प्रेम तन के धर्म का, निर्दोष पूजा-गान
प्रेम-वेदी पर खिले हैं, साधना के फूल
प्रेम सरिता ने बसाये, जिन्दगी के कूल ॥३०॥

प्रणयिनी का प्रेम था, ज्यो नारदीया-भक्ति
कठ मे अभिव्यक्ति की थी, शारदीया-शक्ति
हाथ मे वह ज्योति, अपण की लिए थी प्रीत
सत्य की थी वह शिखा, औ' भक्ति प्रेरित गीत ॥३१॥

साधना वह थी स्वय, साकार उज्ज्वल ध्यान
तीर्थ थी प्रभु के प्रणय की, अनुपमा-उत्तान
प्रेम के उस दीप पर सर्वस्व करके दान
मुग्ध-बाला सी-नवेली, भक्ति का मधुपान ॥३२॥

भक्ति कैसी साधिका की थी, बताओ तात !
प्रश्न जैसी पूछ ली थी, उस पथिक ने बात
मुग्ध-नयनो से पुजारी ने उठाकर हाथ
प्रणयिनी की भक्ति ! बोले मधुर-रस-सघात ॥३३॥

प्राण व्यापी साधना, लेकर चली वह बाल
वासना से दूर कोसो, रसमयी उत्ताल
नित्य लीला को विकल, वह रसमयी थी भक्ति
भाव था दाम्पत्य का, गोविन्द से अनुरक्ति ॥३४॥

बहुत दुर्लभ है, मधुर-रस-साधना लो जान
नित्य-लीला, नित्य-नूतन, प्रभु रसेश, महान
रुक नही सकता निरन्तर, ब्रह्म प्रीति-विहार
है परम उज्ज्वल ग्रमल, रागात्म रस शृ गार ।।३५।।

कृष्ण, राधा, ग्रष्ट सखियाँ, ग्रौ' सखा गण साथ,
परम ग्राह्लादक, परम रमणीय, मधु-रस-स्नात
'रसो वै स' रूप का, होता वहाँ ग्राभास
इष्ट गुण से युक्त, रस शृ गार का ग्रधिवास ।।३६।।

परम वष्णव-जन इसे, भूमा कहें ग्रभिधान
भोग्य यह रस, रूप प्राकृत, ग्रौ' ग्रलकृत जान
यही भूमा है, सदा ग्रमृत, सदा ग्रानन्द
नित्य विग्रह, रूप, छवि, सौन्दय सुख का कद ।।३७।।

वेद से सवेद्य है, यह परम-फल सा शुद्ध
श्रीश, श्री-शृ गार, मधु-रस सा, सरस ग्रति वृद्ध
श्रीश-रस के नाम गुण तो हैं विभिन्न ग्रनेक
श्री, रमा, लक्ष्मी, प्रिया, राधा नवल ग्रभिषेक ।।३८।।

ये सभी ग्रभिधान हैं, इस अक के विन्यास
मिल सभी सघात बनते, नित्य-वदित रास
रस-पुरुष श्री कृष्ण, यह दाम्पत्य नित्य ग्रखड
राधिका-मय, युग्म तन्मय, सत्य शिव ब्रह्म ड ।।३९।।

पान करने योग्य है, ग्रानन्द यह रूपत्व
ध्यान करने योग्य है, रति-रूप, यह रस-तत्व
भोग्य श्री', भोक्तत्व, दोनो तत्व उनमे जान
युग्म मे रसिकत्व ग्रोर रसत्व का ग्रभिधान ।।४०।।

युगल राधा कृष्ण, सब के एक प्राणाधार
सब सखी जन, ग्रौ' सखाजन के सबल ससार
युग्म रूप रसत्व सबको, हो रहा ग्रनुभूत
यह परम ग्रास्वाद्य, भाता भाव से ग्रनुस्यूत ।।४१।।

कृष्ण भी राधा बिना रहते अपूर्ण रसेश
शक्ति रूपा राधिका से, पूर्ण हैं सर्वेश
राधिका अनुराधिनी, आह्लादिका वश-शक्ति
युग्म से मिलकर बनी माधुर्य-मंडित-भक्ति ।।४२।।

कृष्ण यदि वाणी बने, तो राधिका है नीति
कृष्ण है यदि बोध तो, राधा प्रबुद्ध-प्रतीति
कृष्ण हैं यदि धर्म, तो राधा क्रिया का रूप
अनन्याश्रित है युगल, सयोग, सत्य, अनूप ।।४३।।

प्रेम की है चरम सीमा, गोपियो की प्रीति
राधिका है रस-शिरोमणि, मधुर-रस-सगीत
इस युगल मे ब्रज-विपिन मे, क्रीडनीयक रास
नित्य-लीला रूप मे सम्पन्न करते ह्रास ।।४४।।

लिंग का सब भेद, लीला में नही है भक्त
पुरुष नारी एक हैं, यह भाव कान्तासक्त
पुरुष केवल कृष्ण हैं, सखियो सखा सब भक्त
नित्य-लीला के प्रणय-माधुय मे अनुरक्त ।।४५।।

इन्द्रियो के सब विषय, हो जायें अन्तर्धान
एक हो रस भाव, भगवद् प्रीति का आधान
मिल तभी सकता उन्हे, आनन्द पूर्णानन्त
युग्म-सेवा से सभी, रस रूप पाते कन्त ।।४६।।

नित्य यह दाम्पत्य, राधा कृष्ण का सुख-मूल
प्रेम-लीला रसिक जन को, लब्ध है अनुकूल
कृष्ण, राधा सर्वदा हैं, एक-तन अभिराम
हरि-प्रिया की नित्य लीला, भक्त जन सुखधाम ।।४७।।

राधिका आह्लाद, औ' गोविंद है आनन्द
शक्ति, सम्मोहन, शिव का रूप है निर्द्वन्द्व
है यही साकेत लीला, यही अमृत-वृष्टि
यही है गोपाल प्रभु की, रसमयी सत्सृष्टि ।।४८।।

भोग या सभोग से ऊपर सदा यह भाव
कामज्वर आसान्त मन का, है नही यह चाव
प्रीति से अर्पित करे, मन को सदा अनुरक्त
ध्यान, तन, मन, कृष्ण का, अहरह, वही है भक्त ॥४९॥

मधुर-रस के भक्त, राधा के चरण-अनुराग
और उनकी रूप की झाँकी हृदय मे जाग
प्रेम-रस सौन्दर्य औ' लावण्य की यह सृष्टि
केलि प्रिय, माधुर्य राधा, रूप-अमृत वृष्टि ॥५०॥

राधिका की भक्ति से, अनुरक्त होते कृष्ण
प्रियतमा का जानकर, प्रिय भक्त होते कृष्ण
परिष्वजन का प्यार, हाथो मे लिए वनमाल
भक्त को ताम्बूल तक, गोविन्द देते लाल ॥५१॥

भक्त राधा भाव से, अनुरक्त लीला-लास
मलय, कस्तूरी, कमल सी, रसमयी अभिलाप
कृष्ण, व्रज के कृष्ण भी माधुर्य का आस्वाद
प्राप्त करते राधिका की बन सखी सुधि-नाद ॥५२॥

राधिका के रूप का माधुय, रस की खान
प्रीति चन्द्रानन समर्पित, कृष्ण का सम्मान
माधुरी मय रूप सम्मोहन, सुधा का सार
राधिका आह्लाद, सुख की प्रीति का अम्बार ॥५३॥

राधिका का हो अनुग्रह तभी सभव भक्ति
साधना-अनुरक्ति से, मिलती पिया की शक्ति
इसलिए माधुर्य का, हर भक्त राधा-रग
भाव लेता है सखी का, राधिका के सग ॥५४॥

वही पाता नित्य, लीला द्वार भक्त प्रवेश
राधिका की प्रीति-किरणो को मिले लवलेश
इसलिए हर भक्त की, आराध्य राधा शक्ति
परम पावन, प्रेम लीला मे वही अनुरक्ति ॥५५॥

पथिक ने पूछा—कहाँ है तात ! लीलाधाम
प्रणयिनी की भावलीला, क्या रही निष्काम ?
वृद्ध वाचक ने कहा—'माधुर्य का सद्भाव
है गिरा गोतीत, मधुरा-भक्ति-रस के हाव' ।।५६।।

कूल वृन्दा के विपिन से भक्त का हो प्रेम
और हो निष्काम मन मे, श्याम-श्यामा-नेम
वास हो ब्रज मे निरन्तर, ध्यान, कीर्तन, नाम
हो रसिक सत्सग, औ' आराधना ही काम ।।५७।।

नयन मे झाँकी सदा हो श्यामा श्यामा रूप
श्रवण से करता रहे, यश-गान मुक्त अनूप
भाव कान्ता, मन सदा तल्लीन हो सुख-रास
सब जुटाते ही रहे, लीला भवन के लास ।।५८।।

साधना की दिव्य-पूजा भक्त का ससार
श्याम-श्यामा प्रीति-रस के, पूर्ण पारावार
आड से लीला निरखता, मुग्ध रसिक-सुजान
बन भगीरथ, पुण्य सलिला, भक्ति-गगा-स्नान ।।५९।।

भाव सहचरि नित्य है, ब्रज नित्य है, आनन्द
अहर्निश हैं नित्य, वृन्दा नित्य हैं, सुख कन्द
नित्य है शृ गार, नित्य विहार, सुख का सार
नित्य सखियो का सहज-सुख, भाव सुरत-विहार ।।६०।।

सब विविध आसक्तियो का रूप रस-आसक्ति
सभी ललितादिक सखी तल्लीन, करती भक्ति
ज्यो बँधा शिव जटा, गगा का सशक्त-प्रवाह
नेम-पथ त्यो बाँधती सखियाँ सभी उत्साह ।।६१।।

रूप-छवि के डूबती, आनन्द पारावार
दृष्टि-सुख, सेवा, समर्पण गूँथती गलहार
एकटक दृग, राधिका के पद-कमल निस्सव
प्रीति-मद से तृप्त, लीला के प्रफुल्लित अग ।।

कमल-कोमल, दल पटल, शैय्या रचाकर भक्त
श्याम-श्यामा, कुंज भीने, रस सरस अनुरक्त
गौर श्यामल अंक, ऐसे नग रहे सुख-कंद
स्वर्ण में मणिनील मानो, सुरत सुख के वृंद ।।६३।।

कुंज-सेवा, रूप-छवि, प्रियतम-प्रिया के साथ
देखने व्याकुल सदा रहते, सखा अवदात
निरखने लीला स्वयं भी भाग लेने नित्य
मेघ-पुष्पों सा बरसता, रूप रस-आदित्य ।।६४।।

गोप्य है माधुर्य रस ही, सब रसों का सार
और रसना मौन है मधु, रस-रहस व्यापार
श्याम-राधामय, पुलक, लीला-भवन के द्वार
श्याम मय राधा, सदा आनन्द-रस संचार ।।६५।।

नृत्य श्यामा-श्याम रत, सखियाँ बजाती ताल
गान करती राधिका, वर-वेणु मधुर-रसाल
मेघ बरसाते पिया पर, मुस्करा कर फूल
चाँदनी बन कर बरसती, नेह भीगी धूल ।।६६।।

इस तरह वृंदा-विपिन, यह नित्य लीला-लास
अनवरत शाश्वत अमर, माधुर्य सुख का रास
इस प्रणय की याचिका थी, राधिका दिन-रात
भक्ति का उन्माद घिरता, मग्न-तन्मय गात ।।६७।।

नींद नयनों में नहीं लेती, कभी विश्राम
जागरण पिय के लिए था, विरह में संग्राम
विप्रलम्भी ताप से थे, शून्य तन के अंग
सलिल ज्यों था स्वच्छ मन, शापित विदग्ध अनंग ।।६८।।

प्राण तिल-तिल जल रहे थे, प्रीति का था नेह
जल रही थी लौ नयन की, देह एक विदेह
लग्न मनसा का उदय है, प्यास अन्तर्दाह
सो गया था काम तन का, जागता उत्साह ।।६९।।

रूप कुन्दन ज्यो निखर कर, सो गया चुपचाप
गूँजता था साधना का दिव्य-मधुरालाप
हर निमिष सुनने लगी, वह दूर की आवाज
इंगितो की टेर बढती, मेघ मे ज्यो गाज ।।७०।।

बन्द दृग करती, खडे दिखते वही गोविन्द
खोलती, अदृश्य हो जाते कही गोविन्द
एक ही आवाज की, ऊष्मा लिए अनुराग
प्रणय के उपचार जैसे, थे हृदय के दाग ।।७१।।

सब गुलाबी दिव्य-आभा, कामना की गन्ध
हास के शृ गार थे, मुस्कान मे अब बन्द
तप्त अधरो मे भरा, पिय पान रस का सार
देह जलती, ज्यो दहकता हो रजत का तार ।।७२।।

शीश पर जैसे पडा हो असित कच का भार
भाव-रति की मूर्च्छना, बनती गई अभिसार
नयन मे हर क्षण मचलते, अश्रु-पूरित ज्वार
गिर न पाते, स्तब्ध होते आँख के शृ गार ।।७३।।

मुस्कराती, कभी सहसा, कभी उन्मन, मौन
मेघ पट मे तडित जैसा दीखता वह कौन ?
अजिर एकाकी खडा था, तरुण एक कदम्ब
कुसुम सुरभित, व्याज से, बनकर मलय अवलम्ब ।।७४।।

डबडबाते, ताल जैसे, हर निमिष दो नेत्र
सजग था सयम अकेला, साधना के क्षेत्र
अश्रु घुटते जा रहे थे, धूम्र मे ज्यो साम
तन-तपन का रूप-रूपक, हो गया प्रतिन्यास ।।७५।।

प्राण मे व्याकुल विपची सी, ध्वनित थी बीन
स्वप्न से देती उलहने, फिर उसी क्षण दीन
दीप हाथो ले कभी, पिय पथ बिछाती नैन
सौंपती सन्यास के, हाथो सभी सुख चैन ।।७६।।

श्वेत-वसना वन, कभी अभिसारती थी देह
निरखती हर मेघ को, पिय-रग-व्याज सनेह
जागती थी नेत्र तारक मे, विकल-सी रात
भोर मे उन्मन-नयन, लखते सजल जलजात ।।७७।।

भस्म वह श्रीखन्ड की, तन पर लगाती वाल
पर विरह की आग का अनुपात था उत्ताल
कठ पर आरूढ थी, रुद्राक्ष की वह माल
भाल पर टीका विभव का, विरहिणी अन्डाल ।।७८।।

अश्रु के प्रतिबध से, होते गए आरक्त
नेत्र कोरक मे अमिट थी, साधना आसक्त
कह रही हो शान्ति से, 'सन्तप्त मत कर काम'
साधिका हूँ, मैं नही शिव, काम वस धनश्याम ।।७९।।

बाँट आई हूँ तुम्हारी सिद्धियाँ सब काम !
भीख मे पाया पिया का नाम, केवल नाम
देख लोगे माधुरी गोविन्द की वह मूर्ति
साथक हो जायगी ओ काम ! तेरी पूर्ति ।।८०।।

लोकवेदन का पता कर, विष हलाहल पूत
प्रेम ले अदृप्त तन, अब हो गया अवधूत
हृदय प्रस्तर खड होकर, हो गया निष्प्राण
कामना का वज्र मे होता कही है त्राण ? ।।८१।।

लाज से वह कामना का, ज्वर, उदासी थाम
कर नमन, मागी क्षमा की याचना उद्दाम
इस तरह वह सत्य सयम के प्रणय की आग
साधिका भरती गई, प्रभु प्रीति माँग-सुहाग ।।८२।।

भाव डूबी, प्रीति मग्ना, सोहनी ले हाथ
बुहारा करती विपिन, ब्रज वीथियाँ दिन रात
दौडती ब्रज मन्दिरो मे भक्त गण को देख
सिर चढाती रेणु भक्तो की, नयन मे टेक ।।८३।।

कभी वह हरिदास ज्यो, स्वर मे सुनाती बोल
कभी निधुवन मे, कभी मधुवन, विरह कल्लोल
कभी जाग्रत, स्वप्न-वत्, लगता खडे प्रिय पास
कभी प्रिय लगते निठुर, मिश्री पडे ज्यो फाँस ॥८४॥

नेत्र व्याकुल थे दरस दिन, निमिष ज्यो हो कल्प
प्रीति पिय की निधि कभी, लगती उसे हो स्वल्प
कभी वह उन्माद मे, गाती बजाती तार
कभी शिशु सी फफकती, गाती कभी मल्हार ॥८५॥

सूइयां चुभती अनेको, रोम-रोम उदास
कभी कहती-पिय चलो जमुना पुलिन है पास
कभी वह जाती बिहारी के अजिर दरबार
सीढियो पर नृत्य करती पुलकती हरबार ॥८६॥

एकटक हो देखती बाँकी छटा का रूप
किलकती, भुरती, मचलती चचला ज्यो धूप
या व्यजन करती, कभी लेकर मलय का धूप
कभी नयनो को बनाती, गिरा का प्रतिरूप ॥८७॥

कभी सतो सग गाती, झूमती ज्यो गन्ध
कभी वह नेतृत्व करके, गूँजती ज्यो छन्द
कभी यमुना के पुलिन पर वेणु का सबोध
मात्र चरणोदक ग्रहण, कर स्वय से प्रतिशोध ॥८८॥

कभी ललिता को जगाती—'रास देखो रास
ओ सखी ! जागो, जगाओ प्रीति का मधुमास
प्रीति पथ मे नीद कैसी जागरण का नाद
नयन के वातायनो मे, शून्य का सवाद ?' ॥८९॥

कभी पिय से मानकर कहती—'सुनो हे मान !
निठुर हरि ने आज तक, मानी न मेरी बात
भोर सभा हो गया था, मैं खडी चुपचाप
द्वार तक खोला नही, कैसा मुझे है शाप ?' ॥९०॥

मौन मे बीते कई युग, ओ जननि ! दिन रात
पूछती हो तुम बताऊँ क्या मिलन कुशलात ?
ले कटारी कठ चीरू' करूँगी अपघात
शब्द सुन चीखी सखी, ज्यो हुआ उल्का-पात ।।९१।।

नाथ ! यह कैसी विकलता अमित अत्याचार
स्वामिनी को दो शरण, या शमन या सहार
और ललिता भी फफक कर साधिका के, हार,
गिर पडी, उन चरण कमलो, पत्र ज्यो पतझार ।।९२।।

भर गई छाती पथिक की, सुन कथा की पीर
छलकने उनसे लगा, स्नेहार्द्रता का नीर
वृद्ध वाचक की गिरा मे, हो गया अवरोध
भक्ति के इस मोह पर था, ज्ञान का प्रतिबोध ।।९३।।

सुन रही सारी सभा, चुपचाप यह आख्यान
आँसूओ से सिक्त आँखे, यह सुधा का दान
क्या हुआ आगे, कहो बाबा कथा का सार ?
फिर चला आख्यान, भर करुणार्द्र स्वर मे प्यार ।।९४।।

लग रही थी सामने, मजिल बहुत है शेष
गीत मे घुलता गया था, साधिका का वेष
भोर होते भक्त जन, अनगिन खडे हो द्वार
बोलते 'जय विजयिनी,' जय की लिए गु जार ।।९५।।

शब्द अन्तर्नाद केवल शेष बचता झूम
मच गई वृन्दा-विपिन मे मधुर-रस की धूम
समय का इतिहास, लिखता गया यह आख्यान
भक्त अधरो मे समाये, गीत गु जन गान ।।९६।।

गीति यो व्यापी विपिन मे, ज्यो फिरे पवमान
प्राण मे गहरी बसन्त ने, चल रहे दिनमान
एक दिन ललिता चली ब्रज की सुनाने बात
स्वामिनी ! है एक साधक, ब्रज बड़े विख्यात ।।९७।।

नाम मे डूबे हुए, गौड़ीय पथ के भक्त
जीव-गोस्वामी यहा, प्रभु प्रीति मे आसक्त
चलपडी मीरा, सुनाने दर्द, अपनी बात
सूचना भेजी—'दरस को आ गई हूँ तात !' ॥९८॥

जीव बाले—'नारियो का मिलन मुझसे दूर
भक्ति-पथ की शत्रु नारी, व्याघ्र जैसी क्रूर
कहा मीरा ने—'सुनी है आज अनुपम बात
नारियो से क्या पलायन कर सकोगे तात ! ? ॥९९॥

आज तक तो जानती थी—'पुरुष ब्रज मे एक
कृष्ण ही केवल अकेले, ब्रह्म के अभिषेक
शेष जितने भक्त है, वे नारियो के रूप
भक्त को यह दम्भ कसा, है बडा विद्रूप ॥१००॥

बात सुन यह जीव दौडे, अश्रु सिंचित गात
भाव के उन्मेष मे, करबद्ध अवनत माथ
भक्ति के स्फुलिग उडे, बोले किया है पाप
हीनमति हूँ देवि ! मुझको, दो कई अभिशाप ॥१०१॥

'जीव' मीरा का मिलन है, आज ब्रज को याद
भक्त अनगिन गा रहे हैं यह सुखद सवाद
हो गये आश्वस्त, पाकर मानसिक आघात
भक्ति पथ मे भेद, केवल अज्ञता की बात ॥१०२॥

जुड गया था एक पन्ना, दिव्यता मे और
साधिका के सिर बँधा, प्रभु प्रीति प्रण का मोर
इस तरह ब्रज मे अकेली, भक्त वर वह एक
कृष्ण का अभिधान, प्रण की बन गया था टेक ॥१०३॥

साधिका मे एक दिन भभका विरह का ज्वार
लक्ष्य ले पिय का मिलन, करती रही अभिसार
भक्ति ज्वाला से तपी, पावन हुई अब देह
प्राण मे विश्वास का, बरसा घुमड कर नेह ॥१०४॥

हो गई वह आत्मा, जैसा प्रणय का दीप
विरह से सन्तप्त घायल, दीप्ति-मुक्ता-सीप
रुग्णता ऐसी हुई, औषधि नही उपचार
नाम ही गोविन्द का था, पथ्य-पथ-उद्धार ।।१०५।।

प्राण का सब दर्द घुलकर बन गया था राग
गूँजती वागेश्वरी मे, या हृदय की आग
और उसके स्वर-शरो ने बेध डाले अग
विश्व की सब वेदना, उसको मिली थी सग ।।१०६।।

आज भी सदेश उसके कोटि-कोटि अनत
गूँजते है दर्द, स्वर को, ज्यो पुकार ज्वलत
व्याप्त कण-कण आज भी वह ज्यो पवन सचार
अमर है निष्णात पावन, साधिका का प्यार ।।१०७।।

गीत मीरा के, सभी के कठ के शृगार
दर्द मीठा दे गए, ज्यो सघन-पारावार
निधि हमारी बन गए है, दीप्ति के वे छन्द
बन गए है श्रेष्ठतम, आदर्श मन्त्र-अमन्द ।।१०८।।

नयन मे रो हर निमिष, प्रभु की मधुर-तस्वीर
हो सका है क्या कभी भी, म्लान सरिता-नीर ?
घायलो सी घूमती, रसना अमिट पिय नाम
श्रुति मधुर वह राग अब शाश्वत, अमर, अभिराम ।।१०९।।

प्रेम के अमृत कणो से भीग कर, वह बिन्दु
हो गया उत्ताल, रस का मुक्ति पूरित-सिन्धु
प्रेम के उद्वेग को मिलता कहाँ विश्राम ?
गति-प्रगति के दाह का, चिर जागरण अविराम ।।११०।।

जन्म लेकर एक दिन, वह मेघशिशु-सा प्रेम
फैल फर ढँकने लगा, सब विश्व-अम्बर-क्षेम
साधना चिर जागरण की, कमल कोमल देह
प्रणयिनी अब बावरी, होती गई तज गेह ।।१११।।

त्याग तो इस भोग से अत्यन्त होता दूर
कष्ट असि की धार से, उसमे भरे भरपूर
देख रटना पिय मिलन की, सखि हुई बेहाल
चीखकर बोली—'न झोको तन, विरह की ज्वाल'॥११२॥

साधिका बोली—'पिया की सेज शूलो बीच
आँख के अम्लान-रस से, मैं रही हूँ सीच
प्रीति की कलिका बनेगी, भक्ति पथ का फूल
कर रही तन को पिया के चरण तल की धूल ॥११३॥

एक दिन बिछ जायगी, पिय-पथ पडेगी खेह
और मगल-सृष्टि का, बरसा करेगा मेह
बीच मे कोई न होगा, द्वैत जैसा मोह
फिर न होगा सगिनी! प्रिय प्रीति प्राण-विछोह ॥११४॥

नाथ होगे, प्रात होगे, हाथ हागे कृष्ण!
रूप ज्यो रसराज, मेरे साथ हागे कृष्ण!
फिर चलेगी, नित्य-लीला की मधुर-वातास
सत्य होगी, प्रीति, या होगी मरण की प्यास ॥११५॥

साध्य की शैय्या गगन मडल रहे अविराम
सेज साधक की धरा पर, मिलन का क्या काम?
और मीरा तोडने, इन दूरियो का मन्त्र
हो गई, प्रिय नाम के शासन सहज-परतन्त्र ॥११६॥

निरत मीरा प्रेम की इस साधना मे नित्य
यही है वह प्रेम, जिसका अलौलिक लालित्य
प्राप्त कर उसको न बचती शेष कुछ समृद्धि
है यही वह शक्ति, जो देती समपण-सिद्धि ॥११७॥

सुख वही, मिट जाय उसमे, यदि पथिक के प्राण
अमरता की दीप्ति-रेखा, सतत करती त्राण
प्रेम की यह जलन ही, जीवन अमर-विश्वास
प्रेम की ऐसी तपन, अमरत्व का आभास ॥११८॥

मुक्ति बन परिचारिका, छाया सदृश है पास
लक्ष्य की यह साधना, लाती अलौकिक हास
बुद्धि के सभ्रम कुटिलता का वहाँ क्या मान ?
छिन्न करते भेद, प्रिय की साधना के गान ॥११९॥

बाह्य आकर्षण सभी इस अर्चना के द्वार
नष्ट, खंडित और सत्ताहीन, है हर बार
प्रीति की इस राह पर चलना बहुत दुष्कार्य
इसलिए यह पथ सभी का, है नहीं अभिसाय ॥१२०॥

साधना से सिद्धि मिलने का यही है मन्त्र
भिन्न रूपों मे बिखरते इस प्रणय के तन्त्र
साधिका की यह विकलता, मधुर-रस का सार
यह हुआ, लौकिक-अलौकिक अमरता अधिकार ॥१२१॥

इस तरह यह प्रेम-प्रेमा भक्ति का आकार
हो गया समरस सबल, अमरत्व पथ का द्वार
भाव की तन्मय मनस्थिति, पागलो सा हास
एक दिन उसको हुआ, प्रिय-दिव्यता का भास ॥१२२॥

ज्योति-जीवन ने उठाकर सव्यसाची-हाथ,
धर दिया सिर, साधिका का सत्य प्रेम-सनाथ
अश्रु-गगा फफक कर, बहने लगी अविराम
फिर हुए अदृश्य, उस आलोक सँग घनश्याम ॥१२३॥

भाव के आक्रोश मे उसने सुने कुछ बोल
भक्त के वश मे सदा हूँ, भक्ति है अनमोल
ओ प्रिये! आओ तुम्हे पाकर हुआ मैं धन्य
भक्त का अधिकार शाश्वत, प्रीत ससृति जय ॥१२४॥

और देखी साधिका ने, मद वह मुस्कान
ज्ञान की आभा सँजोये, अलौकिक अम्लान
उस वरद-कर ने भरा, फिर माँग मे सिन्दूर
मेघ-पथ ज्यो विद्रुमो की, वीथि हो भरपूर ॥११५॥

गिर पडी भू पर, न सज्ञा शेष थी अब पास
प्रिय-परस प्रभु ने दिया, फिर लौट आये साँस
धन्य थी पाकर, पिया के हाथ से अनुराग
सार्थक था जन्म जीवन, धन्य उसका भाग ।।१२६।।

बात विद्युत् सी, चढी व्रज कुज के सोपान
प्रणयिनी को मिल गई, प्रभु दरस की मुस्कान
धन्य था व्रज, साधिका की, भक्ति पाकर धन्य
भक्ति-रस माधुर्य-मय था, वह अमर-पजन्य ।।१२७।।

पुलक-मय श्रोता सभी सुनकर मधुर-आख्यान
वृद्ध वाचक ने कहा—'थी भक्त ममतावान
मिल गया था अब उसे, प्रभु दरस का अनुराग
देह मे अब बस गया था, दिव्य अमर-सुहाग' ।।१२८।।

प्राण मधु-रस का मिला, श्रोता सभी थे प्रीत
गूँजते थे अब अजिर मे भक्ति के सगीत
वृद्ध बोले—'अब बचा है शेष कुछ आख्यान
प्रणयिनी की द्वारिका की भक्ति का मधु गान' ।।१२९।।

कल सुनाऊँगा, उसी लय प्रीति का, मधु-गीत
शेष अन्तर्लीनता का, गान-मन्त्र-पुनीत
नमन कर श्रोता चले, अब शेष था एकात
मूक इकतारा पडा था, तार उसके शान्त ।।१३०।।

पूर्ण-तद्‌रूप

जुड गई थी फिर अजिर मे, रसिक जन की भीड
वृद्ध-वाचक ने बनाया, भक्ति तन्मय नीड
थे सभी श्रोता सजग बोले—'बताओ तात!
शेष अन्तिम सर्ग के आख्यान की सब बात ॥१॥

फूल ज्यो झरते गये वाचक गिरा से बोल
प्रणयिनी के दीप्ति-पथ की यह कथा अनमोल
विपिन-वृन्दा मे खिले, जो साधना के फूल
फल सभी बनते गये उस रवि तनूजा-कूल ॥२॥

भक्त-गण लाखो दरस को, उमडते थे नित्य
साधिका पर मेघ जैसे, घुमडते थे नित्य
मानते थे सब उसे, प्रभु का अलौकिक-दान
गूँजते थे व्रज चतुर्दिक, प्रणयिनी के मान ॥३॥

दरस पाकर धन्य थे सब, बावरी ज्यो बाल
नाचती थी झूमकर, गाती सुयश गोपाल
हाथ मे थामे विरह की यह अखण्डित डोर
दृष्टि वाणी हो गई थी, साँझ हो या भोर ॥४॥

नृत्य, कीर्तन और पूजा प्रीति-गीत-प्रसाद
भक्त जन की भीड व्रज को आज भी है याद
बीतते थे इस तरह दिन रात, प्रभु के साथ
लग्न तन्मय, भक्त सब, झुककर नवाते माथ ॥५॥

प्रीति-वेला, प्राण सहचर, कृष्ण पूर्ण रसेश
साधिका कृश-काय, अर्पित साधना सर्वेश
नाम रसना पर सतत, गोविंद औ' घनश्याम
पुलक-मय था गात, प्रभु की प्रीति थी निष्काम ॥६॥

उधर सब चित्तौड मे बनवीर से भयभीत,
वीर विक्रम का हुआ वध, छद्म-पूरित जीत
युद्ध की उस आग के गृह-दाह मे जीवन्त
त्याग पन्ना का, अमर विख्यात, मृत्यु-वसन्त ॥७॥

युद्ध ने इस देश का इतिहास डाला वेध
अमर है गृह-दाह के लेखन, विवश निर्वेद
युद्ध ऐसी आग, अत्याचार भीषण-क्रूर
भस्म करती प्रीति को, ममता हृदय से दूर ॥८॥

युद्ध के पन्ने समेटे, रक्तमय प्रतिशोध
शेष होता युद्ध से, सब प्राणमय प्रतिबोध
युद्ध की आँधी भयानक, उजड जाते नीड
युद्ध हाहाकार स्वर मे, खीचता है भीड ॥९॥

युद्ध के भय त्रास हैं, चित्तौड को सब याद
युद्ध के भृङ्गार ने, सब कर दिया बर्बाद
खण्डहरों मे शेष बचते, युद्ध मे प्रासाद
युद्ध से होता महा, रणशूर को उन्माद ॥१०॥

युद्ध का अनुताप भीषण, युद्ध का सन्देश
युद्ध के शोले, दहकते आग के उन्मेष
युद्ध मे सब भस्म, ममता-मोह औ' अनुराग
छोड जाता है हृदय पर मम-भेदी दाग ॥११॥

युद्ध में है रौद्रता का दर्प-पूरित दाह
युद्ध मे आक्रोश, पीडा, कष्टदायक आह
युद्ध ने सन्त्रस्त कर डाली, हृदय की शान्ति
युद्ध से है दूर कोसो, प्राणमय-विश्रान्ति ॥१२॥

युद्ध मे पिसते हजारो के सपन-सधान,
युद्ध दुश्मन शान्ति का है, दप की मुस्कान
युद्ध मे मिटते हजारो जन, निरीह-निकाय
युद्ध से घर टूट जाते, नैश-नाश-उपाय ॥१३॥

युद्ध ने अब तक पचाये हैं, कई रणवीर
युद्ध ने अनगिन मिटाये, धीर, गुण-गम्भीर
युद्ध ने सत्रस्त कर डाली हमारी शान्ति
युद्ध ने सब ध्वस कर डाली, हमारी कान्ति ॥१४॥

युद्ध के आगार मे, कालुष्य का विस्तार
युद्ध के अभिसार मे है, रुदन का अभिचार
युद्ध के आसार विकृत है, बडे विकराल
युद्ध पारावार मे, जीवित भयकर व्याल ॥१५॥

युद्ध से विष फैलता है, राजयक्ष्मी-रोग
युद्ध केवल बाँटता, शोलो भरे सयोग
युद्ध की वेदी, सदा बलिदान से है लाल
युद्ध मे हविष्यान्न होते, वृद्ध वनिता बाल ॥१६॥

युद्ध था, बस राजवशी शान का अभिधान
युद्ध ने भोगे अनेको, राजसी अभियान
युद्ध की छाया भयानक, आज भी तैयार
युद्ध से आतान्त सारे, विश्व का बाजार ॥१७॥

युद्ध से सत्र तोलते है, शक्तियो की सिद्धि
युद्ध मे दिन रात, होती जा रही अभिवृद्धि
युद्ध के बाजार, सारे विश्व मे है गर्म
युद्ध बनता जा रहा है राष्ट्र जीवन-धर्म ॥१८॥

युद्ध ने पोछे, हमारी माँग के सिदूर
युद्ध ने छीने, हमारे पुत्र, प्रण के शूर
युद्ध के दामन भरे है, दर्द हाहाकार
युद्ध ने बाटे भयानक, नाश के उपहार ॥१९॥

युद्ध मे अधिकार-लिप्सा, की भरी है आग
युद्ध मे सहार के कल्मष, भरे हैं दाग
युद्ध करता है, हमारी शान्ति का उपहास
युद्ध-अजगर मे सजग है, क्रूरता की प्यास ॥२०॥

युद्ध हिंसा का, भयानक रूप है विस्तार
युद्ध पशुता वेदना का रूप और संहार
युद्ध मानवता नहीं है, युद्ध दानव गान
युद्ध में जीवित सदा, हिंसामयी विष ज्वार ॥२१॥

युद्ध से दुखी थी नायिका, चित्तौड़ का इतिहास
युद्ध का नर्तन-प्रनर्तन राजश्री ह्रास
प्रार्थना करती सदा, कर बद्ध हो नत माथ
शान्ति दो हे प्रभु! सभी को, जगत के नाथ! ॥२२॥

शरण दो हे प्रभु! सभी को शान्ति का दो जय
युद्ध से हो दूर, जीवन हो यहाँ निस्सार
प्रीति मानव धर्म की हो, स्नेह, ममता, गान
युद्ध पर छाये तुम्हारे नाम की मुस्कान ॥२३॥

अब 'उदय' चित्तौड़ के राणा समर के शूर,
यश प्रणमित, शान के धन से भरे भरपूर
दूत भेज नायिका के पास, गिनगिन बार
पर प्रणयिनी को न था, प्रासाद में अब प्यार ॥२४॥

मड़ता भी युद्ध ज्वर में हो गया आक्रान्त
रो रहा संहार से, वह शान्ति पूरित-प्रान्त
राव वीरम ने सँभाला, तब, शासन मंत्र
आज तक गृह दाह में जो, थे दुखी परतंत्र ॥२५॥

नायिका की प्रार्थना, करने गए युद्ध राव
पर प्रणयिनी को न भाया, राजसी यह भाव
लौट आये, राव वीरम ले उदासी साथ
फिर उठी चित्तौड़ जाने की, वहाँ पर बात ॥२६॥

हो गईं चिंतित, प्रणयिनी सुन उदय आदेश
अब न था, चित्तौड़ में, उस भक्त का उन्मेष
रात्रि में विनिमय हुआ, ललिता खड़ी थी पास
चल पड़े वन्दा विपिन में द्वारिका अधिवास ॥२७॥

कर विहारी को नमन, द्वारावती की राह
चल पड़े वे भक्त दोनों, छोड़ ब्रज की चाह
गगन-चुम्बी मन्दिरों से, था सुसज्जित शांत
लोल लहरों से निमज्जित द्वारिका का प्रान्त ॥२८॥

रो रहा वृन्दा-विपिन, खो साधिका अनुरक्त
साधुजन स्नेही सभी थे, प्रणयिनी के भक्त
नित्य फूलों से बनाती थी, पिया का ताज़
ग्रौर कहती—'सुनी मैंने पिय मिलन-आवाज ॥२९॥

चल चुका है सखि! प्रभो का रथ, मिलन अभिप्रेत
अब न होगा प्राण! तन मन से न कोई द्वैत
गूँजते द्वारावती के अजिर चारों ओर
गीत मीरा के मधुर, दिन-रात, सन्ध्या, भोर ॥३०॥

भक्त-गण, सैलाब से उमड़े, समन्दर तीर
भक्ति के माधुर्य से, सागर बना मधु-नीर
द्वारिका के मन्दिरों के, स्वर्ण-कलश-वितान
साधिका की प्रार्थना से, पुण्य पूरित गान ॥३१॥

भक्त गण उन्मत्त हो, जय बोलते रणछोड़
भक्त औ' भगवान मे, अब लग गई थी होड़
मन्दिरों मे था चतुर्दिक, गीत का ध्वनि-घम
प्राण-प्रण से हो रहा, प्रभु साधना का कम ॥३२॥

साधु भी ब्रज से चले, द्वारावती के धाम
राजसी थे ठाठ प्रभु के, कोटि-कोटि प्रणाम
कर्म-योगी कृष्ण का, लगता यही दरबार
राजवैभव थे सभी, धन्य धान्य से साकार ॥३३॥

आँख से झरझर गिरे, प्रिय प्रीति-अश्रु अपार
भक्त गण जय बोलते, सुन करुण, कान्त पुकार
रो रही ललिता प्रभो की, प्रणयिनी को देख
हेम की थाली लगी हो, लोह की ज्यों मेख ॥३४॥

श्रौर फिर देखा सभी ने, साधिका का वेश
दूध से धोये हुए परिधान, प्रीति विशेष
अगर, चदन, धूप, पूजा-भाव के अम्बार
गीत का उन्माद छाया, रग का शृ गार ।।३५।।

'जय-प्रणयिनी' जय विजय के, नाद गूँजे द्वार
अब अजिर रणछोड प्रभु का, भक्ति पारावार
बीन सी लहरें बजाती, ज्वार का ज्यो दौर
पुण्य का निर्माल्य अर्पित, भक्ति का सिरमौर ।।३६।।

आ गई आनन्द को, वृन्दा-विपिन से सृष्टि
हो रही थी स्वस्ति की, अब द्वारिका मे वृष्टि
इस तरह कुछ वर्ष बीते, तीर्थ के उस धाम
भक्ति-तन्मय प्रणयिनी, रसना सतत घनश्याम ।।३७।।

एक दिन थे नृत्य कीर्तन मे, सभी बेहाल
साधिका प्रभु दरस को, मन्दिर चली प्रतिपाल
सामने देखा, नही विग्रह, स्वय भगवान
बाह फैलाये खडे, ले प्रीति की मुस्कान ।।३८।।

बावरी सी दौडकर, चरणो गिरी वह बाल
प्रीति से प्रभु ने उठाया, भक्त मालामाल
कण्ठ थे अवरुद्ध, नयनो, अश्रु-पारावार
ले चलो दासी चरण मे, प्राण प्रिय ! साकार ।।३९।।

ज्योति की मुस्कान का, तूफान आया एक
भक्त की रख ली प्रभो ने, भावभीनी टेक
फिर हुई वह देह, अ तर्लीन, रूप विदेह
कोटि मगल-मेघ थे, पीयूष बरसा मेह ।।४०।।

भक्त गण हैरान थे, देखा न लौटी देह
साधिका प्रभु-प्रीति-विग्रह, अङ्ग-अङ्ग-सनेह
धन्य थे, सब देखकर, रणछोड प्रभु का रूप
देह तज, ललिता गिरी,। झमा लता ज्यो धूप ।।४१।।

ज्योति अन्तर्लीन मीरा, कृष्ण अन्तर्धान
सिसकता था सामने, चित्तौड का अभिमान
सामने रणछोड का विग्रह बचा था मात्र
हो गया अदृश्य, मीरा के प्रणय का गात्र ।।४२।।

फूल केवल शेष थे, अब था न कोई प्रश्न
ज्योति-लीला, ज्योति-रथ, आरूढ प्रिय थे कृष्ण!
भक्त गण सब चकित होकर, कर रहे यश-गान
साधिका की देह का, पाया न कुछ सन्धान ।।४३।।

शप बाहर था लटकता, खण्ड चीवर मात्र
साधिका का बस यही, परिचय बचा था पात्र
राव राणा चल पडे, नैराश्य लेकर हाथ
झुक गया प्रभु के अजिर मे, स्वय उनका माथ ।।४४।।

भक्त गण ले देह ललिता की, चले हो शान्त
यष्टि से फूटी मलय की गन्ध, फैली प्रान्त
साधुओ की मण्डली गूँजी, विजय-जय बोल
प्रणयिनी की भक्ति के, जयकार गीत अमोल ।।४५।।

वृद्ध स्तोता वर पुजारी ने कहा, इति गीत
कृष्ण! माधव! ओ मुरारी! दिव्य प्रणयिनी प्रीत
कर नमन, करबद्ध मन था, तन उदासी थाम
अश्रु-पूरित नेत्र, रसना पर प्रभो का नाम ।।४६।।

अणु-सजग जीवन सदा है, मृत्यु केवल ब्याज
देह धर्मो से न बँधता, आत्म रूप समाज
कह 'त्वदीय वस्तु' जो, करते समपण प्राण
प्रणयिनी-सा प्यार दे, गोविंद करते त्राण ।।४७।।

भक्ति से तन मन समपण, साध्य को है इष्ट
एक सम्बन्ध श्रेष्ठ है, जिसका स्वरूप विशिष्ट
भक्ति ही वह सिद्धि, जो लाती प्रभो को घेर
लोक-वैभव, इन्द्रिया की प्यास, भ्रम का फेर ।।४८।।

एक सम्बल, एक मन से प्रीति और प्रतीति
नष्ट करती है वही, सब ईति जग की भीति
प्रणय प्रभु का सत्य है, बस शेष सब निस्सार
है वही शिव और सुन्दर साधना साकार ॥४९॥

ओ प्रणय की साधिके ! तुम धन्य धन्य विराट
धन्य राजस्थान की, तुम भक्ति-यश-सम्राट
ओ प्रणय की दीप्ति रेखा ! साधिका निष्काम
साधना की दीपिका है, धन्य प्रणयिनी नाम ॥५०॥

पूत सीता-सी, प्रणय मे राधिका का रूप
शक्ति गीता-सी, करुण भवभूति सृजन अनूप
प्रार्थना-सी दीन, तुम हो आरती का गीत
पतित पावन जाह्नवी सी, निष्कलुष चिर-प्रीत ॥५१॥

सात्विकी निर्वेद-सी, वाणी मधुरता दान
अडिग सयम-सी, विजय मुस्कान हो अम्लान
वेणु-सी मुखरित गिरा, गम्भीर सागर शान्त
शील शकर की उमा सा, भाव मन के कान्त ॥५२॥

दिव्य लीला सी, सरस ज्यो, सलिल मुक्त-प्रवाह
सुदृढ लक्ष्मण-रेख सी, तुम मजिलो की राह
आन-सा निश्चय लिए थी, जलधि-सी गभीर
भक्ति से थी पूत, ज्यो भागीरथी का नीर ॥५३॥

आत्मजा नगराज सी, प्रभु भक्ति रूप-निधान
प्रीति नूतन, नित्य ऊषा सी, सरल छविमान
पुण्य थी तुम वेदवाणी सी, सहज उद्बुद्ध
प्रभु प्रणय का लक्ष्य पाकर, यज्ञ जैसी शुद्ध ॥५४॥

तीर्थ-सी कल्याणकारी, साधना की सिद्धि
कौमुदी सी स्वच्छ-वसना, भक्त जन की सिद्धि
प्रीति जन जन की, मधुर सगीत जैसी कान्त
गीत सी कोमल, अमल औ' भक्ति जसी शान्त ॥५५॥

ओ स्थित-प्रज्ञा ! तुम्हारा मन्त्र जग कल्याण
युग-युगों करता रहेगा, लोक जन का त्राण
योगिनी ! तुम दिव्य पथ की, प्रणय का प्रतिमान
दीप लौ तिल तिल जले ज्यो, त्याग का सधान ।।५६।।

तुम अखण्डित आत्मा हो, धन्यम ममतावान
धन्य तुमको प्राप्त कर, यह राज राजस्थान
प्रेम और बैराग्य का, हो समरसी-आलोक
तुम जहाँ जन्मी सदा, वह धन्य माँ की कोख ।।५७।।

नत तुम्हारी स्मृतियो मे हैं हमारे माथ
प्रणय-पथ चिर सगिनी ! पावन तुम्हारा साथ
चीर कर गहरे तमस को जीत लाई प्रात
बाँट कर अमृत गिरा से, दिव्य पुण्य-प्रभात ।।५८।।

आज तक भीगे, तुम्हारी प्रार्थना से प्राण
शिखा थी तुम दिव्य, प्रणयिनी नाम से कल्याण
दद जो तुमने जिये, वैसे जियेगा कौन ?
इसलिए, इतिहास तुम पर हो गया है मौन ।।५९।।

स्वप्न जैसा लक्ष्य तुमने, कर दिया था सत्य
शुभ समपण था, तुम्हारी साधना का कृत्य
कल्प कल्पो तक अमर, यह मधुर-रस की कान्ति
प्रणयिनी प्रभु नाम की, लौकिक, अलौकिक-शान्ति ।।६०।।



दीप्ति-दान

ओ प्रणय की दीप्ति-लौ ! तुम दो हमे वह शक्ति
रख सकें थाती तुम्हारी, साधना अनुरक्ति
कल्पतरु सी तुम रहोगी, कठ की गल-हार
भक्ति-धन की कामदा ! ओ' सिद्धि यश-अवतार ।।१।।

दो हमे आशीष, जिससे हो अमगल दूर
युद्ध की छाया हटे, टूटें सपन सब क्रूर
क्लेश पीडा और ईर्ष्या, शेष हो निरुपाय
दप, हिंसा, वासना के नग्न-नृत्य उपाय ।।२।।

राष्ट्र सारे सौम्य हो, अधिकार लिप्सा शेष
दीनता के शाप टूटे, हो प्रगति उन्मेष
ग्रह से आक्रान्त जो है, दो उन्हे सद्बुद्धि
मन्त्र दे जन धम का, कर दो सभी की शुद्धि ।।३।।

युद्ध के बादल छटे, हो शान्ति मगल-वृष्टि
राष्ट्र सारे प्रणति ममता की, लिए हो मुष्टि
मा ! तुम्ह गोविन्द से कुछ माँगना है शेष
आज आर्यावर्त्त पर, मँडरा रहे है क्लेश ।।४।।

भक्ति की क्या बात, लिप्सा का छिडा है युद्ध
शान्ति के आदर्श का है, नाम केवल बुद्ध
चीखता इस शान्ति मे है, एक हाहाकार
प्रेम केवल वासना का, रूप, रस, अभिसार ।।५।।

सभ्यता ऐसी बढी, आपानका का ज़ोर
कूट-मन का हो गया, ईमान कोरा शोर
मन्दिरो मे भक्ति का है, सिर्फ अभिनय शेष
द्रव्य वाले जन यहाँ हैं श्रेष्ठ भक्त-रसेश ।।६।।

वासना उद्दाम केवल, प्रेम है व्यापार
नित्य नूतन-रंग मे डूबे हुए अभिसार
छद्म, धोखा और कटुता, सभ्यता का नाम
पारदर्शी वस्त्र, जसे कृत्य, कलुषित काम ॥७॥

भूख, रोटी, दीनता की हाय के अभिशाप
छा गए हैं देश पर, अनगिन हमारे पाप
आज तीनो ताप, तन को खा रहे हैं नित्य
कष्ट, अत्याचार बन कर, आ रहे हैं नित्य ॥८॥

शस्य श्यामल भूमि, उसमें अब नही है अन्न,
हो रहे प्रतिवर्ष जन जन, भूख-मरणासन्न
चुभ रहे अतिवृष्टि के, संदेश शर विकराल
सालते हर वर्ष तन को, क्रूर व्याघ्र-अकाल ॥९॥

आदमी को आदमी, बस नोचता है नित्य
तप्त अणु विस्फोट जग मे, ग्रीष्म ज्यो आदित्य
स्वार्थ-पशु को मिल गया, संहार का आनन्द
शान्ति का आदर्श, लगता कटघरे मे बन्द ॥१०॥

बोल माँ ! क्या था तुम्हारा देश ऐसा देश ?
हम कहा ढूँढे तुम्हे, किम भक्ति के परिवेश ?
है वही वृन्दा-विपिन, यमुना पुलिन है पास
तुम कहा मैं पूछता, बन गीत, गति, आभास ? ॥११॥

आज की अणु-सभ्यता के, नश-नाश उपाय
विश्व मे संहार की आंधी, सभी निरुपाय
दौड शस्त्रो की, तना उनका कुटिल है जाल
जल रही विद्वेष की, मन मे भयकर ज्वाल ॥१२॥

सृजन धर्मी लिख रहे है, नग्नता के गीत
बन रही आदर्श अब, विवस्त्रता की प्रीत
अब नही जीवन्त, तुलसीदास जसे पूत
अब नही हैं राम, औ' हनुमान जैसे दूत ॥१३॥

कहाँ है रघुवंश, सागर-सूर जैसी दृष्टि ?
कहाँ 'उत्तरराम' जैसी, करुण मंगल वृष्टि ?
हैं कहाँ सब, प्रीति के वे मेघदूती गान ?
रह गई साहित्य की मंजिल श्रह का दान ॥१४॥

'पावती' के बाद चमका 'एकलव्य' महान
उर्वशी के पारदर्शी, हैं सभी परिधान
झाँकती बाणाम्बरी, अतिवाद का प्रतिबन्ध
शब्द-यश लोकायतन की, काव्य-रजनीगन्ध ॥१५॥

हम करें आग्रह-दुराग्रह, सभ्यता के नाम
चल रही है लेखनी, अतिवादिता है धाम
हाथ में स्मिति ध्वज उठा, चलता मनोविज्ञान
बोलता हर एक पन्ना, दर्द, कुण्ठा सान ॥१६॥

सब पुरातन व्यथ है, जिसके चरण हैं छन्द
सान-नूतनता चढ़ी, बौने पुराने बन्ध
इस तरह जो आ रहा, वह शुद्ध है अतिवाद
अब नहीं सामान्य-जन का, आंशिक सवाद ॥१७॥

वर्ग-कुण्ठा, हीनता, आक्रोश का साहित्य
वासना, विकृत-जवानी, जोश का साहित्य
भावना है शून्य केवल, बुद्धि का आदेश
चल रहा है सृजन बहुरूपी, बदल कर भेष ॥१८॥

राह दो हे मा ! इन्हे, गोविन्द की आशीष
प्रीति सच्ची, कार्य मे ईमान, धन-वारीश
राजनैतिक छद्म-कृत्यो, का बिछा है जाल
राष्ट्र का सेवक वही, जो द्रव्य मालामाल ॥१९॥

धर्म तो निरपेक्ष, पर सापेक्ष हैं सब काम
शुभ्रता की बाँह थामे, चल रहे उद्दाम
डाल ले मुस्कान, चलता राजनैतिक-सात
हाथ मे जन-भक्ति की, ज्योतित मशाल दुरन्त ॥२०॥

कृष्ण ! तेरे देश, भारत का यही है हाल
त्रस्त आर्यावर्त्त के सब वृद्ध, वनिता, बाल
सो रहे हैं नयन मूँदे, जागने के बाद
पा रहा जीवन, बनावट से भरी हर दाद ॥२१॥

नारियों की क्या कहे, कथा मिलाकर साथ
चल रहीं अधिकार सुख का, पत्र लेकर हाथ
कार्य मे नूतन, बने परिधान सारी सिद्धि
अथ और अनथ दोनों, मत्र देते रिद्धि ॥२२॥

लाज-बंधन, मोह तज, करती नये अभिसार
प्रीति-सज्ञा-साधना का, आधुनिक आकार
मन्दिरों के नाम अब, बदले हुए हैं अम्ब !
पात्र है प्राचीन, नूतन सभ्यता कादम्ब ॥२३॥

आज की शिक्षा लुटाती जा रही है रग,
अथ विदेशी बादलों की, तपिश पाकर सग
इन सभी से झाँकता है, एक हाहाकार
रूप, कृत्रिम-जिन्दगी का, हो रहा है भार ॥२४॥

मर्म के खाली पडे हैं, नीति नैतिक-पात्र
बच गया आतिथ्य का, आकार छूँछा मात्र
कुछ लुटेरों की लगी, इस भूमि पर है आख
दभ, छद्म, असत्य से, कुछ मूल्य लेते आक ॥२५॥

विश्व के न्यायालयों मे, माँगते है न्याय
देश के उस स्वर्ग का, जिस पर हमारा दाय
कुछ विदेशी, दर्प-रोगी, कर रहे अन्याय
युद्ध के पोषक लुटेरे, नाश, हिंसा, हाय ॥२६॥

हस-पाँखी देश के सब नोच डाले पख
बज रहे हैं, अब विदेशी-सभ्यता के शख
वही भारत भूमि, जिस पर बुद्ध, माधव, राम
खेलते जमुना पुलिन पर, गोपियों के श्याम ॥२७॥

ज़िन्दगी का यन्त्र-चालित, रूप केवल शेष
देखना है तो उठाओ, नेत्र हे सर्वेश !
कामना, ऐश्वय मे खुलकर लगी है होड
लग गए है रेशमी-पट मे, अनेकों जोड ॥२८॥

प्रेम के उद्दाम ज्वर से, हर युवक आक्रान्त
शत-जीवी से रहित है, देश का हर प्रान्त
वासना के रूप-रूपक, भिन्न-भिन्न अनन्त
देह-यष्टि, वितृष्ण-सुख, विष-ज्वार रूप-दुरन्त ॥२९॥

इन्द्रियो की प्यास, अपने चरम पर गोपाल !
भोग, वभव, रूप का, कृत्रिम तना है जाल
हर कला के प्रेत, अब, मँडरा रहे दिन रात
नोचते है देह से ममता, सुरुचि की बात ॥३०॥

माँ प्रणयिनी ! है तुम्हारे देश का यह हाल
तुम बता देना, यही है दुर्निवार अकाल
फिर कभी सभव उन्हे, आ जायँ सबकी याद
हो कदाचित् देश फिर, गोविन्द से आबाद ॥३१॥

भक्ति दो महिमामयी, आराधिके ! बस भक्ति
जिन्दगी से जूझने की, शक्ति दो, बस शक्ति
हाथ मे तिनका लिए है, सामने उत्ताल
कर्म सागर, पार कर, जाना हमे तत्काल ॥३२॥

जिन्दगी अतिवाद से, कर मुक्त हे गोपाल !
कर्म की शैवालिनी को, दो प्रवाह-विशाल
रुग्णता हो दूर, बल का सिद्धि-पारावार
देश की सस्कृति जिये, जीवन्त यह साकार ॥३३॥

छद्म के सब जाल टूटें, पुण्य, समता गान
दूर कर विभ्रम, बढाओ शक्ति का आधान
नारियाँ दो प्रणयिनी सी, साध्य-पथ बलिदान
फिर न हो वह स्वार्थ, ईर्ष्या से भरा विष पान ॥३४॥

देश को दो सिद्धि से, सम्पन्न ऐसे शूर
युद्ध नर-सहार से, रक्षा करें भरपूर
भक्ति का अवलम्ब, अमृत-दान कर दो कृष्ण!
साधना, विश्वास, ममतादान कर दो कृष्ण! ॥३५॥

पार्थ दो ऐसे कि जिनके सव्यसाची-हाथ
मान की रक्षा करें, जन धम लेकर साथ
फिर बजा दो वेणु, जो जन-जन करें कल्याण
शान्ति का उद्घोष फूँको, मानवी परित्राण ॥३६॥

हर कदम कर्तव्य का हो, बस गिरा मे सत्य
जिन्दगी समरस बने, कर मित्रता के कृत्य
कर रहे अर्पित तुम्हे, यह प्रार्थना गोविन्द!
लो नमन कोटीश, यह आराधना गोविन्द! ॥३७॥

कर दिया विश्राम, वह आख्यान का इति-गीत
मन्त्र सुन उद्बोध, तुलसी-दल, अजिर मे प्रीत
चल पडा, बोला पथिक 'सकल्प जीवन-कर्म
माँ! तुम्हारी साधना का मम कर्मठ धर्म ॥३८॥

जा रहा हूँ, कर्म, ममता, शान्ति का ले ज्वार
ले अटल विश्वास, सेवा, प्रीति का साकार
हर अजिर की देहरी, उसकी प्रतीक्षा नित्य
कर्म का प्रतिबोध करता, ज्योति ज्यो आदित्य ॥३९॥

प्रान्त था निस्पन्द, मन्दिर जागता था नित्य
बिखरता प्रतिदिन वहाँ, प्रभु-प्रीति का लालित्य
भक्त गण आते वहाँ, पारस-परस शृंगार
बिन्दु की थी साधना, अब सिन्धु का आकार ॥४०॥

आज भी चित्तौड के उस दुग पर साकार
प्रणयिनी की प्रीति-ममता के खुले ह द्वार
कीर्ति का वह स्तभ, गौरव की लिए मुस्कान
प्रणयिनी की साधना से अमर राजस्थान ॥४१॥ □□